

Chapter चार

प्रजापति दक्ष द्वारा भगवान् से की गई हंसगुह्य प्रार्थनाएँ

जब महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से याचना की कि इस ब्रह्माण्ड के जीवों की सृष्टि के विषय में और विस्तार से वर्णन करें तो शुकदेव गोस्वामी ने उन्हें बतलाया कि जब प्राचीन बर्हि के दसों पुत्र प्रचेता तप करने के लिए समुद्र में प्रविष्ट हो गये तो राजा के अभाव में पृथ्वीलोक उपेक्षित पड़ गया। स्वाभाविक था कि अनेक झाड़-झंखाड़ तथा व्यर्थ के वृक्ष उग आये और अन्न उत्पन्न नहीं हुआ। सारी भूमि जंगल जैसी बन गई। जब प्रचेताओं ने समुद्र से बाहर निकलकर देखा कि सम्पूर्ण संसार वृक्षों से भरा हुआ है, तो वे वृक्षों से अत्यधिक कुपित हुए और उन्होंने स्थिति को सुधारने के लिए वृक्षों को नष्ट करने का निश्चय किया। अतः प्रचेताओं ने वृक्षों को जलाकर राख कर देने के लिए वायु तथा अग्नि उत्पन्न की। किन्तु चन्द्रमा तथा समस्त वनस्पति के

राजा सोम ने प्रचेताओं को वृक्षों को नष्ट करने से मना किया, क्योंकि वृक्ष सारे जीवों के लिए फल तथा फूल के साधन हैं। प्रचेताओं को तुष्ट करने के लिए सोम ने उन्हें प्रम्लोचा अप्सरा से उत्पन्न एक सुन्दरी कन्या प्रदान की। इन सभी प्रचेताओं के वीर्य से इस सुन्दरी से दक्ष उत्पन्न हुए।

प्रारम्भ में दक्ष ने सारे देवताओं, असुरों तथा मनुष्यों को उत्पन्न किया, किन्तु जब उन्होंने देखा कि जनसंख्या सही ढंग से नहीं बढ़ रही तो उन्होंने संन्यास ले लिया और वे विन्ध्याचल चले गये जहाँ उन्होंने कठिन तपस्या की और भगवान् विष्णु की *हंसगुह्य* नामक प्रार्थना की। इससे भगवान् विष्णु उन पर अत्यधिक प्रसन्न हो गये। प्रार्थना इस प्रकार थी—

“भगवान् हरि परमात्मा जीवों तथा भौतिक प्रकृति दोनों ही के नियन्ता हैं। वे आत्म-निर्भर तथा आत्म-प्रकाशित हैं। जिस तरह अनुभूति का विषय हमारी अनुभूति की इन्द्रियों का कारण नहीं होता उसी तरह जीव, यद्यपि अपने शरीर के भीतर रहता है, अपने नित्य मित्र परमात्मा को, जो कि सारी इन्द्रियों की सृष्टि का कारण है, उत्पन्न नहीं करता। जीव के अज्ञान के कारण उसकी इन्द्रियाँ भौतिक वस्तुओं में लगी रहती हैं। चूँकि जीव सजीव होता है, अतः वह इस भौतिक जगत के सृजन को कुछ हद तक समझ सकता है, किन्तु वह भगवान् को नहीं समझ सकता जो शरीर, मन तथा बुद्धि की धारणा के परे हैं। फिर भी सदा ध्यान में लगे रहने वाले मुनिगण अपने-अपने हृदयों में भगवान् के साकार रूप को देख सकते हैं।

चूँकि सामान्य जीव भौतिक रूप से दूषित होता है, अतः उसके शब्द तथा बुद्धि भी भौतिक होते हैं। अतएव वह अपनी भौतिक इन्द्रियों के द्वारा भगवान् को सुनिश्चित नहीं कर सकता। भौतिक इन्द्रियों द्वारा प्राप्त की गई ईश्वर की धारणा सही नहीं होती, क्योंकि भगवान् भौतिक इन्द्रियों से परे हैं, किन्तु जब कोई व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को भक्ति में लगाता है, तो आत्मा के स्तर पर नित्य भगवान् का उद्घाटन होता है। जब वे परम ईश्वर किसी के जीवन का लक्ष्य बन जाते हैं, तो यह कहा जाता है कि उसने आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

“परब्रह्म समस्त कारणों के कारण हैं क्योंकि वे सृष्टि के पूर्व विद्यमान थे। वे भौतिक तथा

आध्यात्मिक हर वस्तु के आदि कारण हैं और उनका अस्तित्व स्वतंत्र होता है। किन्तु भगवान् की एक शक्ति है, जो अविद्या कहलाती है। यह मिथ्या तार्किक को यह सोचने के लिए प्रेरित करती है कि मैं पूर्ण हूँ और यह माया को बहलाती है कि बद्धात्मा को मोहग्रस्त करे। वह परब्रह्म अर्थात् परमात्मा अपने भक्तों के प्रति अतीव वत्सल हैं। उन पर कृपा करने के लिए वे अपने रूप, नाम, वैशिष्ट्य तथा गुणों को उद्धाटित करते हैं जिससे इस भौतिक जगत में उनकी पूजा की जा सके।

“किन्तु दुर्भाग्यवश जो लोग भौतिकता में लीन रहते हैं, वे विविध देवताओं की पूजा करते हैं। जिस तरह कमल के फूल से होकर बहने वाली वायु फूल की गन्ध अपने साथ ले जाती है या यही हवा कभी-कभी अपने साथ धूल ले जाने के कारण रंगीन प्रतीत होती है, उसी तरह भगवान् अपने विविध मूर्ख पूजकों की इच्छाओं के अनुसार विविध देवताओं के रूप में प्रकट होते हैं, किन्तु वे वास्तव में परम सत्य भगवान् विष्णु ही रहते हैं। वे अपने भक्तों की इच्छाओं को पूरा करने के लिए विविध अवतारों में प्रकट होते हैं, अतएव देवताओं को पूजने की कोई आवश्यकता नहीं है।”

दक्ष की प्रार्थना से अत्यन्त तुष्ट होकर भगवान् विष्णु अष्टभुजी रूप में उसके समक्ष प्रकट हुए। भगवान् पीताम्बर वस्त्र पहने थे और उनका वर्ण श्यामल था। यह जानकर कि दक्ष भोग-मार्ग का पालन करने के लिए अतीव उत्सुक है भगवान् ने उन्हें माया का भोग करने की शक्ति प्रदान की। भगवान् ने पञ्चजन की पुत्री असिक्नी उसे समर्पित की जो यौन सुख के लिए महाराज दक्ष के लिए उपयुक्त थी। दक्ष को यह नाम इसलिए प्राप्त हुआ, क्योंकि वह यौन जीवन में अतीव दक्ष था। यह वर देने के बाद भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये।

श्रीराजोवाच

देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् ।

सामासिकस्त्वया प्रोक्तो यस्तु स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ १ ॥

तस्यैव व्यासमिच्छामि ज्ञातुं ते भगवन्वथा ।

अनुसर्ग यया शक्त्या ससर्ज भगवान्परः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने कहा; देव-असुर-नृणाम्—देवताओं तथा मनुष्यों की; सर्गः—सृष्टि; नागानाम्—नागों (सर्प जैसे जीव) के; मृग-पक्षिणाम्—पशुओं तथा पक्षियों के; सामासिकः—संक्षेप में; त्वया—तुम्हारे द्वारा; प्रोक्तः—वर्णित; यः—जो; तु—किन्तु; स्वायम्भुवे—स्वायम्भुव मनु की; अन्तरे—अवधि में; तस्य—उसके; एव—निस्सन्देह; व्यासम्—विस्तृत वर्णन; इच्छामि—चाहता हूँ; ज्ञातुम्—जानने के लिए; ते—तुमसे; भगवन्—हे प्रभु; यथा—साथ ही; अनुसर्गम्—गौण सृष्टि; यया—जिस; शक्त्या—शक्ति से; ससर्ज—उत्पन्न किया; भगवान्—भगवान् से; परः—दिव्य ।

वर प्राप्त राजा ने शुकदेव गोस्वामी से कहा : हे प्रभु! देवता, असुर, मनुष्य, नाग, पशु तथा पक्षी स्वायम्भुव मनु के शासन काल में उत्पन्न किये गये थे। आपने इस सृष्टि के विषय में संक्षेप में (तृतीय स्कन्ध में) कहा है। अब मैं इसके विषय में विस्तार से जानना चाहता हूँ। मैं भगवान् की उस शक्ति के विषय में भी जानना चाहता हूँ जिससे उन्होंने गौण सृष्टि की।

श्रीसूत उवाच

इति सम्प्रश्नमाकर्ण्य राजर्षेर्बादरायणिः ।

प्रतिनन्द्य महायोगी जगाद मुनिसत्तमाः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; सम्प्रश्नम्—जिज्ञासा; आकर्ण्य—सुनकर; राजर्षेः—राजा परीक्षित की; बादरायणिः—शुकदेव गोस्वामी ने; प्रतिनन्द्य—प्रशंसा करके; महा-योगी—महान् योगी; जगाद—उत्तर दिया; मुनि-सत्तमाः—हे मुनियों में श्रेष्ठ ।

सूत गोस्वामी ने कहा : हे (नैमिषारण्य में एकत्र) महामुनियो! जब महान् योगी शुकदेव गोस्वामी ने राजा परीक्षित की जिज्ञासा सुनी तो उन्होंने उसकी प्रशंसा की और इस प्रकार उत्तर दिया ।

श्रीशुक उवाच

यदा प्रचेतसः पुत्रा दश प्राचीनबर्हिषः ।

अन्तःसमुद्रादुन्मग्ना ददृशुर्गा द्रुमैर्वृताम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; यदा—जब; प्रचेतसः—प्रचेताओं ने; पुत्राः—पुत्र; दश—दस; प्राचीनबर्हिषः—राजा प्राचीन बर्हि के; अन्तः-समुद्रात्—समुद्र के भीतर से; उन्मग्नाः—बाहर आये; ददृशुः—उन्होंने देखा; गाम्—सम्पूर्णलोक को; द्रुमैः वृताम्—वृक्षों से आवृत ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब प्राचीनबर्हि के दसों पुत्र उस जल से बाहर निकले

जिसमें वे तपस्या कर रहे थे तो उन्होंने देखा कि संसार की समूची सतह वृक्षों से ढक गई है।

तात्पर्य : जब राजा प्राचीनबर्हि वैदिक अनुष्ठान कर रहा था जिसमें पशुओं की हत्या की संस्तुति की गई थी तो नारद मुनि ने दयावश उसे सलाह दी कि इस अनुष्ठान को रोक दे। प्राचीनबर्हि नारद की बात भलीभाँति समझ गया, अतः वह राज्य छोड़कर तपस्या करने के लिए जंगल चला गया। किन्तु उसके दस पुत्र जल के भीतर तपस्या कर रहे थे, अतएव संसार की व्यवस्था देखने वाला कोई न था। जब दसों पुत्र, प्रचेतागण, जल से बाहर आये तो उन्होंने देखा कि पृथ्वी वृक्षों से ढक गई है।

जब सरकार कृषि की उपेक्षा करती है, जो अन्न उत्पादन के लिए आवश्यक है, वह भूमि व्यर्थ के वृक्षों से ढक जाती है। निस्सन्देह, अनेक वृक्ष उपयोगी होते हैं, क्योंकि वे फल-फूल उत्पन्न करते हैं, किन्तु दूसरे अनेक वृक्ष अनावश्यक होते हैं। उनका उपयोग ईंधन के लिए किया जा सकता है और भूमि को साफ करके उसमें खेती की जा सकती है। जब सरकार लापरवाही बरतती है, तो अन्नोत्पादन कम होता है। जैसा कि *भगवद्गीता* (१८.४४) में कहा गया है—
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्—वैश्यों के स्वभाव के अनुसार उनका उचित कार्य खेती करना तथा गौवों की रक्षा करना है। सरकार तथा क्षत्रियों का कर्तव्य है कि वे यह देखें कि तृतीय वर्ण के सदस्य वैश्य जो न तो ब्राह्मण हैं, न क्षत्रिय, ठीक से काम में लगे। क्षत्रिय मनुष्यों की रक्षा करने के निमित्त होते हैं, जबकि वैश्य उपयोगी पशुओं, विशेषतया गायों, की रक्षा करने के निमित्त हैं।

द्रुमेभ्यः क्रुध्यमानास्ते तपोदीपितमन्यवः ।

मुखतो वायुमग्निं च ससृजुस्तद्दिधक्षया ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

द्रुमेभ्यः—वृक्षों से; **क्रुध्यमानाः—**अत्यन्त क्रुद्ध होकर; **ते—**वे (प्राचीनबर्हि के दसों पुत्र); **तपः—**दीपित-मन्यवः—दीर्घ तपस्या के कारण जिनका क्रोध बढ़ गया था; **मुखतः—**मुख से; **वायुम्—**वायु; **अग्निम्—**आग; **च—**तथा; **ससृजुः—**उन्होंने उत्पन्न किया; **तत्—**उन जंगलों को; **दिधक्षया—**जला डालने की इच्छा से।

जल में दीर्घकाल तक तपस्या करने के कारण प्रचेतागण वृक्षों पर अत्यधिक क्रुद्ध थे। उन्हें जलाकर भस्म करने की इच्छा से उन्होंने अपने मुखों से वायु तथा अग्नि उत्पन्न की।

तात्पर्य : *तपोदीपितमन्यवः* शब्द सूचित करता है कि जो लोग कठिन तपस्या किये रहते हैं उनमें महान् योग शक्ति होती है, जैसाकि प्रचेताओं से पता लगता है जिन्होंने अपने मुखों से अग्नि तथा वायु उत्पन्न की। यद्यपि भक्तगण कठिन तपस्या करते हैं, किन्तु वे *विमन्वयः*, *साधवः* थे जिसका अर्थ है कि वे कभी क्रुद्ध नहीं होते। वे सदैव सद्गुणों से अलंकृत रहते हैं। *भागवत* (३.२५.२१) में कहा गया है—

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।

अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥

साधु अर्थात् भक्त कभी क्रुद्ध नहीं होता। वस्तुतः उन भक्तों का जो तपस्या करते हैं, असली स्वभाव क्षमाशीलता है। यद्यपि वैष्णव को तपस्या से पर्याप्त शक्ति मिलती है, किन्तु विभिन्न कठिनाइयों में पड़ने पर वह कभी क्रुद्ध नहीं होता। यदि कोई तपस्या करता है, किन्तु वैष्णव नहीं बनता तो उसमें सद्गुण उत्पन्न नहीं होते। उदाहरणार्थ, हिरण्यकशिपु तथा रावण ने भी महान् तपस्याएँ की थीं, किन्तु उन्होंने अपनी आसुरी प्रवृत्तियों का प्रदर्शन करने के लिए ऐसा किया। वैष्णवों को भगवान् की महिमा का प्रचार करते समय अनेक विरोधियों का सामना करना पड़ता है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु की संस्तुति है कि वे प्रचार करते हुए क्रुद्ध न हों। श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह सूत्र दिया है—*तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः*—मनुष्य को चाहिए कि मन की विनीत अवस्था में, अपने को मार्ग में उगे हुए तिनके से भी निम्न समझते हुए भगवान् का कीर्तन करे। उसे वृक्ष से भी अधिक सहनशील, मिथ्या प्रतिष्ठा के भाव से रहित तथा अन्यो को आदर देने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए। ऐसी मनोदशा में मनुष्य भगवान् का निरन्तर कीर्तन कर सकता है। जो लोग भगवान् की महिमा के प्रचारकार्य में लगे हुए हैं उन्हें घास (तृण) से भी अधिक विनीत एवं वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु होना चाहिए।

तब वे बिना कठिनाई के भगवान् की महिमा का प्रचार कर सकते हैं।

ताभ्यां निर्दह्यमानांस्तानुपलभ्य कुरुद्वह ।
राजोवाच महान्सोमो मन्युं प्रशमयन्निव ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

ताभ्याम्—वायु तथा अग्नि द्वारा; निर्दह्यमानान्—जलाये गये; तान्—उन (वृक्षों) को; उपलभ्य—देखकर; कुरुद्वह—हे महाराज परीक्षित; राजा—जंगलों के राजा; उवाच—कहा; महान्—महान्; सोमः—चन्द्रमा का अधिष्ठाता देव, सोमदेव ने; मन्युम्—क्रोध को; प्रशमयन्—शान्त करते हुए; इव—सदृश।

हे राजा परीक्षित! जब वृक्षों के राजा तथा चन्द्रमा के अधिष्ठाता देव सोम ने अग्नि तथा वायु को समस्त वृक्षों को जलाकर राख करते देखा तो उसे अपार दया आई, क्योंकि वह समस्त वनस्पतियों तथा वृक्षों का पालनकर्ता है। प्रचेताओं के क्रोध को शान्त करने के लिए सोम इस प्रकार बोला।

तात्पर्य : इस श्लोक से पता चलता है कि चन्द्रमा का अधिष्ठाता देव (सोमदेव) ब्रह्माण्ड-भर के वृक्षों तथा पौधों का पालनकर्ता है। चाँदनी के कारण वृक्ष तथा पौधे तेजी से बढ़ते हैं। अतएव हम उन तथाकथित विज्ञानियों को किस प्रकार स्वीकार कर सकते हैं जिनकी चन्द्र-यात्राओं ने हमें जानकारी दी है कि चन्द्रमा पर कोई वृक्ष या वनस्पति नहीं है? श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—सोमो वृक्षाधिष्ठाता स एव वृक्षाणां राजा—चन्द्रमा का अधिष्ठाता देव सोम सारी वनस्पतियों का राजा है। हम यह कैसे विश्वास कर सकते हैं कि वनस्पति के पालनकर्ता के ही लोक में वनस्पति नहीं है?

न द्रुमेभ्यो महाभागा दीनेभ्यो द्रोग्धुमर्हथ ।
विवर्धयिषवो यूयं प्रजानां पतयः स्मृताः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; द्रुमेभ्यः—वृक्षों को; महा-भागाः—हे परम भाग्यशाली; दीनेभ्यः—अत्यन्त गरीबों; द्रोग्धुम्—जलाकर भस्म करने के लिए; अर्हथ—तुम्हें चाहिए; विवर्धयिषवः—वृद्धि लाने के लिए इच्छुक; यूयम्—तुम सब; प्रजानाम्—सारे जीवों का, जिन्होंने तुम्हारी शरण ले रखी है; पतयः—स्वामी या रक्षक; स्मृताः—के रूप में ज्ञात।

हे भाग्यवान् महाशयों! तुम लोगों को चाहिए कि इन बेचारे वृक्षों को जलाकर भस्म न

करो। तुम लोगों का कर्तव्य नागरिकों (प्रजा) के लिए समस्त समृद्धि की कामना करना तथा उनके रक्षकों के रूप में कार्य करना है।

तात्पर्य : यहाँ यह संकेत हुआ है कि सरकार या राजा का कर्तव्य है कि वह न केवल मनुष्य की रक्षा करे, अपितु अन्य सारे जीवों की भी रक्षा करे जिनमें पशु वृक्ष तथा वनस्पतियाँ सभी सम्मिलित हैं। किसी भी जीव को व्यर्थ में मारा न जाये।

अहो प्रजापतिपतिर्भगवान्हरिव्ययः ।

वनस्पतीनोषधीश्च ससर्जोर्जमिषं विभुः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

अहो—हाय; प्रजापति-पतिः—जीवों के स्वामियों का स्वामी; भगवान् हरिः—भगवान् हरि; अव्ययः—अविनाशी; वनस्पतीन्—वृक्षों को; ओषधीः—जड़ी बूटियों को; च—तथा; ससर्ज—उत्पन्न किया; ऊर्जम्—स्फूर्तिदायी; इषम्—भोजन; विभुः—परम पुरुष ने।

भगवान् श्री हरि सारे जीवों के स्वामी हैं जिनमें ब्रह्मा जैसे सारे प्रजापति सम्मिलित हैं। चूँकि वे सर्वव्यापक तथा अविनाशी प्रभु हैं, अतः उन्होंने अन्य जीवों के लिए खाद्य वस्तुओं के रूप में इन सारे वृक्षों तथा शाकों को उत्पन्न किया है।

तात्पर्य : चन्द्रमा के अधिष्ठाता देव सोम ने प्रचेताओं को स्मरण दिलाया कि प्रजापतियों के भी पति भगवान् ने इस वनस्पति को हर एक को भोजन प्रदान करने के लिए उत्पन्न किया है। यदि प्रचेतागण इन्हें नष्ट कर डालने का प्रयत्न करेंगे तो उनकी अपनी प्रजा भी कष्ट भोगेगी, क्योंकि भोजन के लिए वृक्षों की भी आवश्यकता पड़ती है।

अन्नं चरणामचरा ह्यपदः पादचारिणाम् ।

अहस्ता हस्तयुक्तानां द्विपदां च चतुष्पदः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

अन्नम्—भोजन; चरणाम्—चलने वालों या पंखों वालों का; अचराः—न चलने वालों (फलों-फूलों) का; हि—निस्सन्देह; अपदः—बिना पैर वाले जीव यथा घास; पाद-चारिणाम्—पैरों पर चलने वाले पशुओं, यथा गौवों तथा भैसों के; अहस्ताः—बिना हाथ वाले पशु; हस्त-युक्तानाम्—हाथों से युक्त पशुओं यथा बाघ आदि का; द्वि-पदाम्—दो पैरों वाले मनुष्यों का; च—तथा; चतुः-पदः—चार पैरों वाले हिरण जैसे पशु।

प्रकृति की व्यवस्था के द्वारा फलों तथा फूलों को कीड़ों तथा पक्षियों का भोजन माना जाता है; घास तथा अन्य बिना पैर वाले जीव गायों तथा भैसों जैसे चौपायों के भोजन के लिए हैं। वे पशु, जो अपने अगले पैरों को हाथों की तरह काम में नहीं ला सकते पंजों वाले बाघों जैसे पशुओं के भोजन हैं तथा हिरन एवं बकरे जैसे चौपाये जानवर तथा खाद्यान्न भी मनुष्यों के भोजन के निमित्त होते हैं।

तात्पर्य : प्रकृति के नियम द्वारा या भगवान् की व्यवस्था से एक प्रकार का जीव दूसरे जीवों का भक्ष्य है। जैसाकि यहाँ पर उल्लेख किया गया है—*द्विपादां च चतुष्पदः*—चौपाये जानवर (*चतुष्पदः*) तथा खाद्यान्न मनुष्यों (*द्विपादाम्*) के भक्ष्य हैं। ये चौपाये जानवर हिरन तथा बकरियों जैसे पशु हैं, इनमें गौएँ नहीं आतीं, जिनकी रक्षा की जानी चाहिए। सामान्यतया समाज की उच्चतर श्रेणियाँ—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जातियाँ—मांस नहीं खातीं। कभी-कभी क्षत्रिय जंगल में हिरन जैसे पशुओं का शिकार करने जाते हैं, क्योंकि उन्हें वध करने की कला सीखनी होती है और कभी कभी वे पशुओं को खाते भी हैं। शूद्र भी बकरे जैसे पशुओं को खाते हैं। किन्तु गौएँ मनुष्यों द्वारा वध किये जाने या खाने के लिए नहीं हैं। प्रत्येक शास्त्र में गो-वध की प्रबल रूप से निन्दा की गई है। वस्तुतः जो गो वध करता है उसे उतने वर्षों तक कष्ट भोगना पड़ता है जितने कि गाय के शरीर में बाल होते हैं। *मनुसंहिता* का कथन है—*प्रवृत्तिरेषाभूतानां निवृत्तिस्तु महाफला*—इस भौतिक जगत में हममें अनेक प्रवृत्तियाँ होती हैं, किन्तु मनुष्य जीवन इसलिए मिला है कि उन प्रवृत्तियों को मोड़ना सीखें। जो लोग मांस खाना चाहते हैं, वे अपनी जीभ की जरूरत निम्नतर पशुओं को खाकर पूरी कर सकते हैं, किन्तु उन्हें गौओं का वध नहीं करना चाहिए, क्योंकि दूध की पूर्ति करने के कारण गौओं को मानव समाज की माताएँ स्वीकार किया गया है। शास्त्रों की विशेषरूप से संस्तुति है—*कृषिगोरक्ष्य*—मानव समाज के वैश्य वर्ग को कृषि कार्यो द्वारा सारे समाज के भोजन का प्रबन्ध करना चाहिए और गौओं को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए, क्योंकि वे सर्वाधिक लाभदायक पशु हैं और मानव-समाज को दूध देती हैं।

यूयं च पित्रान्वादिष्टा देवदेवेन चानघाः ।
प्रजासर्गाय हि कथं वृक्षान्निर्दग्धुमर्हथ ॥ १० ॥

शब्दार्थ

यूयम्—तुम सब; च—भी; पित्रा—अपने पिता द्वारा; अन्वादिष्टाः—आदेश दिये गये; देव-देवेन—स्वामियों के भी स्वामी भगवान् द्वारा; च—भी; अनघाः—हे निष्पाप; प्रजा-सर्गाय—सन्तान उत्पन्न करने के लिए; हि—निस्सन्देह; कथम्—कैसे; वृक्षान्—वृक्षों को; निर्दग्धुम्—जलाकर भस्म करने के लिए; अर्हथ—समर्थ हैं।

हे शुद्ध हृदयवाले! तुम्हारे पिता प्राचीनबर्हि तथा भगवान् ने तुम सबों को प्रजा उत्पन्न करने का आदेश दिया है। अतः तुम लोग इन वृक्षों तथा वनस्पतियों को किस तरह जलाकर भस्म कर सकते हो जिनकी आवश्यकता तुम्हारी प्रजा तथा तुम्हारे वंशजों के पालन के लिए पड़ेगी?

आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितम् ।
पित्रा पितामहेनापि जुष्टं वः प्रपितामहैः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

आतिष्ठत—पालन करो; सताम् मार्गम्—महापुरुषों के मार्ग का; कोपम्—क्रोध; यच्छत—दमन करो; दीपितम्—जो अब जाग्रत है; पित्रा—पिता द्वारा; पितामहेन अपि—तथा पितामह द्वारा; जुष्टम्—सम्पन्न; वः—तुम्हारा; प्रपितामहैः—तुम्हारे परदादाओं द्वारा।

तुम्हारे पिता, पितामह तथा परदादाओं ने जिस अच्छाई के मार्ग का अनुसरण किया था, वह प्रजा के पालन करने का था जिसमें मनुष्य, पशु तथा वृक्ष सम्मिलित हैं। तुम लोगों को उसी मार्ग का पालन करना चाहिए। व्यर्थ का क्रोध तुम्हारे कर्तव्य के विरुद्ध है। अतएव मेरी प्रार्थना है कि तुम लोग अपने क्रोध को नियंत्रित करो।

तात्पर्य : यहाँ पर—*पित्रा पितामहेनापि जुष्टं वः प्रपितामहैः*—शब्द एक सत्यनिष्ठ राज-परिवार का चित्रण करते हैं—जिसमें राजा, उनके पिता, उनके पितामह तथा उनके प्रपितामह होते हैं। ऐसे राज-परिवार का एक प्रतिष्ठित पद होता है, क्योंकि यह *प्रजा* का, अर्थात् नागरिकों का, भरण-पोषण करता है। *प्रजा* शब्द उसका द्योतक है, जिसने सरकार के शासन-क्षेत्र के अन्तर्गत जन्म लिया हो। उच्च राजपरिवार वाले सचेष्ट रहते थे कि सारे जीवों को, चाहे वे मनुष्य हों, पशु या

पशुओं से निम्नतर अन्य जीव, संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। आधुनिक प्रजातांत्रिक पद्धति इस प्रकार उन्नति नहीं कर सकती क्योंकि चुने गये नेता केवल अधिकार के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, उनमें उत्तरदायित्व का कोई भाव नहीं रहता। राजतंत्र में प्रतिष्ठा-प्राप्त राजा अपने पूर्वजों के महान् कार्यों का अनुकरण करता है। इस तरह चन्द्रमा का राजा सोम यहाँ पर प्रचेताओं को उनके पिता, पितामह तथा प्रपितामहों के यशों का स्मरण कराता है।

तोकानां पितरौ बन्धू दृशः पक्ष्म स्त्रियाः पतिः ।

पतिः प्रजानां भिक्षूणां गृह्यज्ञानां बुधः सुहृत् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तोकानाम्—बच्चों का; पितरौ—माता-पिता; बन्धू—मित्र; दृशः—आँख की; पक्ष्म—पलक; स्त्रियाः—स्त्रियों का; पतिः—पति; पतिः—रक्षक; प्रजानाम्—प्रजा का; भिक्षूणाम्—भिखारियों का; गृही—गृहस्थ का; अज्ञानाम्—अज्ञानियों का; बुधः—विद्वान्; सु-हृत्—मित्र।

पिता तथा माता जिस तरह अपनी सन्तानों के मित्र और पालनकर्ता होते हैं, जिस तरह पलक आँख की रक्षा करती है, पति जिस तरह पत्नी का भर्ता तथा रक्षक होता है, जिस तरह गृहस्थ भिखारियों का अन्नदाता तथा रक्षक होता है तथा जिस तरह विद्वान् अज्ञानी का मित्र होता है, उसी तरह राजा अपनी प्रजा का रक्षक तथा जीवनदाता होता है। वृक्ष भी राजा की प्रजा होते हैं, अतएव उन्हें भी संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

तात्पर्य : भगवान् की इच्छा से असहाय जीवों के नाना प्रकार के रक्षक तथा पालनकर्ता होते हैं। वृक्ष भी प्रजा माने जाते हैं, अतएव राजा का कर्तव्य है कि वह वृक्षों की भी रक्षा करे, अन्यो के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं। राजा अपने राज्य के जीवों की रक्षा करने के लिए कर्तव्यबद्ध होता है। इस तरह यद्यपि माता-पिता अपनी सन्तानों की सुरक्षा तथा भरण-पोषण के लिए सीधे जिम्मेदार होते हैं, किन्तु राजा का कर्तव्य यह देखना है कि सारे माता-पिता अपना कर्तव्य उचित रीति से निबाहें। इसी तरह राजा इस श्लोक में वर्णित अन्य रक्षकों की भी निगरानी करने के लिए जिम्मेदार होता है। यह भी ध्यान देने की बात है कि जिन भिखारियों का भरण-पोषण गृहस्थों को

करना है वे पेशेवर भिखारी नहीं, अपितु संन्यासी तथा ब्राह्मण हों जिन्हें भोजन तथा वस्त्र प्रदान करना गृहस्थों का कर्तव्य है।

अन्तर्देहेषु भूतानामात्मास्ते हरिरीश्वरः ।

सर्वं तद्दिष्यमीक्षध्वमेवं वस्तोषितो ह्यसौ ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अन्तः देहेषु—शरीरों (हृदयों) के भीतर; भूतानाम्—सारे जीवों के; आत्मा—परमात्मा; आस्ते—निवास करता है; हरिः—भगवान्; ईश्वरः—स्वामी या निदेशक; सर्वम्—समस्त; तत्-धिष्यम्—उसका आवास स्थान; ईक्षध्वम्—देखने का प्रयास करते हैं; एवम्—इस प्रकार; वः—तुमसे; तोषितः—तुष्ट; हि—निस्सन्देह; असौ—भगवान्।

भगवान् सारे जीवों के हृदय में परमात्मा रूप में स्थित हैं, चाहे वे चर हों या अचर। इनमें मनुष्य, पक्षी, पशु, वृक्ष तथा सारे जीव सम्मिलित हैं। इसलिए तुम लोगों को प्रत्येक शरीर को भगवान् का वासस्थान या मन्दिर मानना चाहिए। इस दृष्टिकोण से तुम लोग भगवान् को तुष्ट कर सकोगे। तुम लोगों को क्रोध में आकर वृक्षों रूपों में स्थित इन जीवों का वध नहीं करना चाहिए।

तात्पर्य : जैसा कि भगवद्गीता में कहा गया है और समस्त वैदिक शास्त्रों द्वारा पुष्टि की गई है—ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति—परमात्मा हर एक के हृदय में स्थित है। चूँकि हर एक का शरीर भगवान् का निवास है, अतएव व्यर्थ के द्वेष से शरीर का विनाश नहीं करना चाहिए। इससे परमात्मा असन्तुष्ट होगा। सोम ने प्रचेताओं को यह बतलाया, क्योंकि उन्होंने परमात्मा को तुष्ट करने का प्रयास किया था, किन्तु अब उन्हें चाहिए कि उसे असन्तुष्ट न करें।

यः समुत्पतितं देह आकाशान्मन्युमुल्बणम् ।

आत्मजिज्ञासया यच्छेत्स गुणानतिवर्तते ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; समुत्पतितम्—सहसा जाग्रत हुआ; देहे—शरीर में; आकाशात्—आकाश से; मन्युम्—क्रोध; उल्बणम्—शक्तिशाली; आत्म-जिज्ञासया—आध्यात्मिक या आत्म-साक्षात्कार के प्रति पूछताछ से; यच्छेत्—दमन करता है; सः—वह व्यक्ति; गुणान्—भौतिक प्रकृति के गुणों को; अतिवर्तते—लाँघ जाता है।

जो व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार की जिज्ञासा करता है और इस तरह अपने शक्तिशाली

क्रोध को—जो शरीर में सहसा जाग्रत हो जाता है, मानों आकाश से गिरा हो उसे दबाता है, वह भौतिक प्रकृति के गुणों को लाँघ जाता है।

तात्पर्य : जब कोई क्रुद्ध होता है, तो वह अपने आपको तथा अपनी स्थिति को भूल जाता है, किन्तु यदि वह अपनी स्थिति पर ज्ञान द्वारा विचार करता है, तो वह प्रकृति के गुणों को लाँघ जाता है। मनुष्य सदा से कामेच्छाओं, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या इत्यादि का दास रहा है, किन्तु यदि वह आध्यात्मिक प्रगति में पर्याप्त बल प्राप्त कर लेता है, तो वह उनको वश में कर सकता है। जो व्यक्ति ऐसा नियंत्रण कर लेता है, वह सदैव दिव्य पद पर स्थित रहेगा और भौतिक गुणों द्वारा अस्पृश्य रहेगा। ऐसा तभी सम्भव है जब वह पूरी तरह भगवान् की सेवा में लगा रहे। जैसा कि भगवद्गीता (१४.२६) में भगवान् कहते हैं—

मां चयोऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।

स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

“जो समस्त परिस्थितियों में एकान्त भाव से पूर्ण भक्ति में प्रवृत्त होता है और नीचे नहीं गिरता है, वह तुरन्त ही प्रकृति के गुणों को लाँघ जाता है और इस प्रकार ब्रह्म के स्तर (पद) तक पहुँच जाता है।” मनुष्य को भक्ति में लगाकर कृष्णभावनामृत आन्दोलन उसे क्रोध, लोभ, काम, द्वेष इत्यादि से सदा परे रखता है। मनुष्य को भक्तिमय सेवा करनी चाहिए, अन्यथा वह प्रकृति के गुणों का शिकार बनता रहेगा।

अलं दग्धैर्दुर्मैदीनैः खिलानां शिवमस्तु वः ।

वाक्षीं ह्येषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अलम्—पर्याप्त; दग्धैः—जल रहे; दुर्मैः—वृक्षों द्वारा; दीनैः—बेचारे; खिलानाम्—शेष वृक्षों का; शिवम्—सर्व सौभाग्य; अस्तु—हो; वः—तुम लोगों का; वाक्षीं—वृक्षों से पालित; हि—निस्सन्देह; एषा—यह; वरा—रुचि; कन्या—कन्या, पुत्री; पत्नीत्वे—पत्नी के रूप में; प्रतिगृह्यताम्—स्वीकार करो।

अब इन बेचारे वृक्षों को जलाने की आवश्यकता नहीं है। जो वृक्ष शेष हैं उन्हें

सुखपूर्वक रहने दें। निस्सन्देह, तुम लोगों को भी सुखी रहना चाहिए। यहाँ पर एक सुयोग्य सुन्दर लड़की है, जिसका नाम मारिषा है और जिसका पालन-पोषण इन वृक्षों ने अपनी पुत्री के रूप में किया है। तुम लोग इस सुन्दर लड़की को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर सकते हो।

इत्यामन्त्र्य वरारोहां कन्यामाप्सरसीं नृप ।

सोमो राजा ययौ दत्त्वा ते धर्मेणोपयेमिरे ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; आमन्त्र्य—सम्बोधित करके; वर-आरोहाम्—उठे सुन्दर कूल्हों वाली; कन्याम्—कन्या को; आप्सरसीम्—अप्सरा से उत्पन्न; नृप—हे राजा; सोमः—चन्द्रमा का अधिष्ठाता सोम देव ने; राजा—राजा; ययौ—दे दिया; दत्त्वा—देकर; ते—वे; धर्मेण—धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार; उपयेमिरे—ब्याही गई।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजन्! प्रचेताओं को तुष्ट करने के बाद चन्द्रमा के राजा सोम ने प्रम्लोचा अप्सरा से उत्पन्न सुन्दर कन्या उन्हें प्रदान की। प्रचेताओं ने प्रम्लोचा की कन्या का स्वागत किया। उसके उठे हुए नितम्ब अतीव सुन्दर थे। उन्होंने धार्मिक पद्धति के अनुसार उसके साथ विवाह कर लिया।

तेभ्यस्तस्यां समभवद्दक्षः प्राचेतसः किल ।

यस्य प्रजाविसर्गेण लोका आपूरितास्त्रयः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तेभ्यः—सारे प्रचेताओं से; तस्याम्—उसमें; समभवत्—उत्पन्न हुआ; दक्षः—दक्ष, सन्तान उत्पन्न करने में दक्ष; प्राचेतसः—प्रचेताओं का पुत्र; किल—निस्सन्देह; यस्य—जिसका; प्रजा-विसर्गेण—जीवों की उत्पत्ति द्वारा; लोकाः—जगत; आपूरिताः—पूरित; त्रयः—तीनों।

उस लड़की के गर्भ से प्रचेताओं ने दक्ष नामक एक पुत्र उत्पन्न किया जिसने तीनों लोकों को जीवों से भर दिया।

तात्पर्य : दक्ष सर्वप्रथम स्वायंभुव मनु के शासनकाल में जन्मे थे, किन्तु शिवजी का अपमान करने के कारण उनके असली सिर के स्थान पर बकरे का सिर लगाकर उन्हें दण्ड दिया गया था। इस तरह अपमानित होकर उन्हें वह शरीर त्यागना पड़ा था और छठे मन्वन्तर में, जो चाक्षुष

मन्वन्तर कहलाता है, वे मारिषा के गर्भ से दक्ष के रूप में उत्पन्न हुए। इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

चाक्षुषे त्वन्तरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते ।

यः ससर्ज प्रजा इष्टाः स दक्षो दैवचोदितः ॥

“उसका पहले का शरीर नष्ट कर दिया गया था, किन्तु उसी दक्ष ने, परम इच्छा की प्रेरणा से चाक्षुष मन्वन्तर में सभी इच्छित जीवों को उत्पन्न किया।” (भागवत ४.३०.४९) । इस तरह दक्ष को अपना पहले का ऐश्वर्य प्राप्त हो गया और उसने करोड़ों सन्तानें उत्पन्न कीं जिनसे तीनों लोक पूरित हो गये।

यथा ससर्ज भूतानि दक्षो दुहितृवत्सलः ।

रेतसा मनसा चैव तन्ममावहितः शृणु ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; ससर्ज—उत्पन्न किया; भूतानि—जीवों को; दक्षः—दक्ष ने; दुहितृ-वत्सलः—अपनी पुत्रियों के प्रति अतीव स्नेहिल; रेतसा—वीर्य से; मनसा—मन से; च—भी; एव—निस्सन्देह; तत्—वह; मम—मुझसे; अवहितः—सावधान होकर; शृणु—सुनो।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : कृपया अत्यन्त ध्यानपूर्वक मुझसे सुनें कि किस तरह प्रजापति दक्ष ने, जो अपनी पुत्रियों के प्रति अति स्नेहिल थे, अपने वीर्य से तथा मन से विभिन्न प्रकार के जीवों को उत्पन्न किया।

तात्पर्य : दुहितृ-वत्सलः शब्द सूचित करता है कि सारी प्रजा दक्ष की पुत्रियों से उत्पन्न हुई।

श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि इससे प्रतीत होता है कि दक्ष के कोई पुत्र न था।

मनसैवासृजत्पूर्वं प्रजापतिरिमाः प्रजाः ।

देवासुरमनुष्यादीन्नभःस्थलजलौकसः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

मनसा—मन से; एव—निस्सन्देह; असृजत्—उत्पन्न किया; पूर्वम्—प्रारम्भ में; प्रजापतिः—प्रजापति (दक्ष) ने; इमाः—इन; प्रजाः—जीवों; देव—देवताओं; असुर—असुरों; मनुष्य-आदीन्—मनुष्यों इत्यादि को; नभः—आकाश में; स्थल—भूमि पर; जल—अथवा जल के भीतर; ओकसः—जिनके निवास हैं।

प्रजापति दक्ष ने सर्वप्रथम अपने मन से सभी तरह के देवताओं, असुरों, मनुष्यों, पक्षियों, पशुओं, जलचरों इत्यादि को उत्पन्न किया।

तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः ।

विन्ध्यपादानुपव्रज्य सोऽचरदुष्करं तपः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; अबृंहितम्—न बढ़ते हुए; आलोक्य—देखकर; प्रजा-सर्गम्—जीवों की सृष्टि; प्रजापतिः—जीवों के जनक दक्ष; विन्ध्य-पादान्—विन्ध्याचल पर्वत के निकट; उपव्रज्य—जाकर; सः—उसने; अचरत्—सम्पन्न किया; दुष्करम्—अत्यन्त कठिन; तपः—तपस्या।

किन्तु जब प्रजापति दक्ष ने देखा कि वे ठीक से सभी प्रकार के जीवों को उत्पन्न नहीं कर पा रहे हैं, तो वे विन्ध्याचल पर्वतश्रेणी के निकट एक पर्वत पर गये और वहाँ पर उन्होंने अत्यन्त कठिन तपस्या की।

तत्राघमर्षणं नाम तीर्थं पापहरं परम् ।

उपस्पृश्यानुसवनं तपसातोषयद्धरिम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ पर; अघमर्षणम्—अघमर्षण; नाम—नामक; तीर्थम्—पवित्र स्थान; पाप-हरम्—सारे पापफलों को विनष्ट करने के लिए उपयुक्त; परम्—सर्वश्रेष्ठ; उपस्पृश्य—आचमन तथा स्नान करके; अनुसवनम्—नियमित रूप से; तपसा—तपस्या द्वारा; अतोषयत्—प्रसन्न किया; हरिम्—भगवान् को।

उस पर्वत के निकट अघमर्षण नामक एक तीर्थस्थल था। वहाँ पर प्रजापति दक्ष ने सारे कर्मकाण्ड सम्पन्न किये और भगवान् हरि को प्रसन्न करने के लिए महान् तपस्या में संलग्न होकर उन्हें संतुष्ट किया।

अस्तौषीद्धंसगुह्येन भगवन्तमधोक्षजम् ।

तुभ्यं तदभिधास्यामि कस्यातुष्यद्यथा हरिः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

अस्तौषीत्—तुष्ट किया; हंस-गुह्येन—हंसगुह्य नामक प्रसिद्ध स्तुतियों से; भगवन्तम्—भगवान्; अधोक्षजम्—इन्द्रियों की पहुँच से परे; तुभ्यम्—तुमको; तत्—वह; अभिधास्यामि—बतलाऊँगा; कस्य—प्रजापति दक्ष से; अतुष्यत्—तुष्ट हो गया; यथा—जिस तरह; हरिः—भगवान्।

हे राजन्! अब मैं आपसे हंसगुह्य नामक स्तुतियों की पूरी व्याख्या करूँगा जिन्हें दक्ष ने भगवान् को अर्पित किया और मैं बताऊँगा कि किस तरह उन स्तुतियों से भगवान् उन पर प्रसन्न हुए।

तात्पर्य : यह समझने की बात है कि हंसगुह्य स्तुतियों की रचना दक्ष द्वारा नहीं हुई थी, अपितु वे वैदिक वाङ्मय में पहले से विद्यमान थीं।

श्रीप्रजापतिरुवाच

नमः परायावितथानुभूतये

गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे ।

अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभि-

निवृत्तमानाय दधे स्वयम्भुवे ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

श्री-प्रजापति: उवाच—प्रजापति दक्ष ने कहा; नमः—सादर नमस्कार; पराय—परब्रह्म को; अवितथ—सही; अनुभूतये—उसको, जिसकी आध्यात्मिक शक्ति उसकी अनुभूति कराती है; गुण-त्रय—प्रकृति के तीनों गुणों का; आभास—प्रकट होने वाले जीवों का; निमित्त—तथा भौतिक शक्ति का; बन्धवे—नियन्ता को; अदृष्ट-धाम्ने—जो अपने धाम में देखे नहीं जाते; गुण-तत्त्व-बुद्धिभिः—बद्धजीवों द्वारा जिनकी मन्द बुद्धि बताती है कि असली सत्य प्रकृति के तीन गुणों की अभिव्यक्ति में पाया जाता है; निवृत्त-मानाय—जो सारे भौतिक मापों तथा गणनाओं को पार कर चुका हो; दधे—अर्पित करता हूँ; स्वयम्भुवे—परमेश्वर, बिना कारण के प्रकट होने वाले भगवान् को।

प्रजापित दक्ष ने कहा : भगवान् माया तथा उससे उत्पन्न शारीरिक कोटियों से परे हैं। उनमें अचूक ज्ञान तथा परम इच्छा-शक्ति रहती है और वे जीवों तथा माया के नियन्ता हैं। जिन बद्धात्माओं ने इस भौतिक जगत को सर्वस्व समझ रखा है वे उन्हें नहीं देख सकते, क्योंकि वे व्यावहारिक ज्ञान के प्रमाण से परे हैं। वे स्वतः प्रकट तथा आत्म-तुष्ट हैं। वे किसी कारण द्वारा उत्पन्न नहीं किये जाते। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् की दिव्य स्थिति की व्याख्या हुई है। वे उन बद्धात्माओं द्वारा नहीं देखे जा सकते जो भौतिक दृष्टिकोण के आदी हैं और जो यह नहीं समझ सकते कि भगवान् अपने

उस धाम में विद्यमान रहते हैं, जो उनकी दृष्टि से परे है। भले ही कोई भौतिकतावादी व्यक्ति ब्रह्माण्ड के सारे परमाणुओं की गिनती कर ले, किन्तु फिर भी वह भगवान् को समझ नहीं सकता। जैसी कि ब्रह्म संहिता (५.३४) में पुष्टि की गई है—

पन्थास्तु कोटिशतवत्सरसंप्रगम्यो
वायोरथापि मनसो मुनिपुंगवानाम् ।
सोऽप्यस्ति यत्प्रपदसीम्यविचिन्त्यतत्त्वे
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

बद्धात्माएँ करोड़ों वर्षों तक अपनी मानसिक चिन्तनपरक विधियों (मीमांसा) से मन या वायु की गति से यात्रा करते हुए भगवान् को समझने का प्रयास क्यों न करें फिर भी परब्रह्म उनके लिए अचिन्त्य बने रहेंगे, क्योंकि भौतिकतावादी व्यक्ति भगवान् के असीम अस्तित्व की लम्बाई तथा चौड़ाई को नहीं माप सकता। यदि परब्रह्म माप से परे हैं, तो यह प्रश्न किया जा सकता है कि कोई उनकी अनुभूति किस तरह करे? इसका उत्तर यहाँ पर स्वयम्भुवे शब्द द्वारा दिया गया है, जिसका अर्थ है कि कोई उन्हें समझे या न समझे, फिर भी वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति में विद्यमान रहते हैं।

न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः
सखा वसन्संवसतः पुरेऽस्मिन् ।
गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टे-
स्तस्मै महेशाय नमस्करोमि ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; यस्य—जिसका; सख्यम्—मैत्रीभाव; पुरुषः—जीव; अवैति—जानता है; सख्युः—परम मित्र का; सखा—मित्र; वसन्—रहते हुए; संवसतः—साथ रहने वाले के; पुरे—शरीर में; अस्मिन्—यह; गुणः—इन्द्रिय अनुभूति का विषय; यथा—जिस तरह; गुणिनः—उसी इन्द्रिय का; व्यक्त-दृष्टेः—जो भौतिक जगत का निरीक्षण करता है; तस्मै—उस; महा-ईशाय—परम नियन्ता को; नमस्करोमि—मैं नमस्कार करता हूँ।

जिस तरह इन्द्रियविषय (रूप, स्वाद, स्पर्श, गन्ध तथा ध्वनि) यह नहीं समझ सकते

कि इन्द्रियाँ उनकी अनुभूति किस तरह करती हैं, उसी तरह बद्ध-आत्मा यद्यपि अपने शरीर में परमात्मा के साथ-साथ निवास करता है, यह नहीं समझ सकता कि भौतिक सृष्टि के स्वामी परम आध्यात्मिक पुरुष किस तरह उसकी इन्द्रियों को निर्देश देते हैं। मैं उन परम पुरुष को सादर नमस्कार करता हूँ जो परम नियन्ता हैं।

तात्पर्य : व्यष्टि आत्मा तथा परमात्मा एकसाथ शरीर के भीतर निवास करते हैं। इसकी पुष्टि उपनिषदों में इस उपमा से की जाती है कि दो मित्र पक्षी एक ही वृक्ष में निवास करते हैं—एक पक्षी उस वृक्ष के फल को खा रहा है और दूसरा एकमात्र साक्षी है और उसका निर्देशन करता है। यद्यपि व्यष्टि जीव, जिसकी उपमा फल खा रहे पक्षी से दी गई है, अपने मित्र परमात्मा के साथ बैठा हुआ है, किन्तु व्यष्टि जीव उसे देख नहीं सकता। वस्तुतः परमात्मा इन्द्रियविषयों के भोग में उसकी इन्द्रियों के कामकाज में निर्देश देते रहते हैं, किन्तु जिस तरह ये इन्द्रिय-विषय इन्द्रियों को नहीं देख सकते उसी तरह बद्धात्मा उस निर्देशनकारी आत्मा को नहीं देख सकता। बद्धात्मा के कई इच्छाएँ होती हैं और परमात्मा उन्हें पूरी करता है, किन्तु बद्धात्मा उस परमात्मा को देख नहीं पाता। इस तरह दक्ष प्रजापति परमात्मा को नमस्कार करते हैं, यद्यपि वे उन्हें देख पाने में अमसर्थ हैं। अन्य उदाहरण यह है कि यद्यपि सामान्य नागरिक सरकार के निर्देश के अन्तर्गत कार्य करते हैं, किन्तु वे यह नहीं समझ सकते कि वे किस तरह शासित हो रहे हैं या कि सरकार क्या है? इस प्रसंग में मध्वाचार्य *स्कन्द पुराण* का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करते हैं—

यथा राज्ञः प्रियत्वं तु भृत्या वेदेन चात्मनः ।

तथा जीवो न यत्सख्यं वेत्ति तमै नमोऽस्तु ते ॥

“जिस तरह किसी बृहद् संस्थान के विभिन्न विभागों के अनेकों सेवक उस सर्वोच्च प्रबन्ध-निर्देशक को नहीं देख पाते जिसके अधीन वे कार्य करते हैं, उसी तरह बद्धात्माएँ अपने शरीर के भीतर बैठे हुए परम मित्र को नहीं देख पातीं। इसलिए हम उस परम को सादर नमस्कार करते हैं, जो हमारी भौतिक आँखों से अदृश्य है।”

देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा-
 मात्मानमन्यं च विदुः परं यत् ।
 सर्वं पुमान्वेद गुणांश्च तज्ज्ञो
 न वेद सर्वज्ञमनन्तमीडे ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

देहः—यह शरीर; असवः—प्राण वायु; अक्षाः—विभिन्न इन्द्रियाँ; मनवः—मन, ज्ञान, बुद्धि तथा अहंकार; भूत-मात्राम्—पाँच स्थूल तत्त्व तथा पाँच इन्द्रिय-विषय (रूप, स्वाद, ध्वनि इत्यादि); आत्मानम्—अपने आप; अन्यम्—अन्य; च—तथा; विदुः—जानते हैं; परम्—परे; यत्—जो; सर्वम्—हर वस्तु; पुमान्—जीव; वेद—जानता है; गुणान्—प्रकृति के गुणों को; च—तथा; तत्-ज्ञः—उन वस्तुओं को जानने वाला; न—नहीं; वेद—जानता है; सर्व-ज्ञम्—सर्वज्ञ को; अनन्तम्—असीम; ईडे—मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

केवल पदार्थ होने के कारण शरीर, प्राण वायु, बाह्य तथा आन्तरिक इन्द्रियाँ, पाँच स्थूल तत्त्व तथा सूक्ष्म इन्द्रियविषय (रूप, स्वाद, गन्ध, ध्वनि तथा स्पर्श) अपने स्वभाव को, अन्य इन्द्रियों के स्वभाव को या उनके नियन्ताओं के स्वभाव को नहीं जान पाते हैं। किन्तु जीव अपने आध्यात्मिक स्वभाव के कारण अपने शरीर, प्राणवायु, इन्द्रियों, तत्त्वों तथा इन्द्रियविषयों को जान सकता है और वह तीन गुणों को भी, जो उनके मूल में होते हैं, जान सकता है। इतने पर भी, यद्यपि जीव उनसे पूर्णतया भिन्न होता है, किन्तु वह परम पुरुष को, जो सर्वज्ञ तथा असीम है, देख पाने में अक्षम रहता है। इसलिए मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : यद्यपि भौतिक विज्ञानी भौतिक तत्त्वों, शरीर, इन्द्रियों, इन्द्रियविषयों तथा प्राणशक्ति को नियंत्रित करने वाली वायु तक का भी विश्लेषणात्मक अध्ययन कर सकते हैं, तो भी वे यह नहीं समझ पाते कि इन सबों के ऊपर एक असली आत्मा है। दूसरे शब्दों में, आत्मा होने के कारण जीव सारी भौतिक वस्तुओं को समझ सकता है या स्वरूपसिद्ध होने पर वह उन परमात्मा को समझ सकता है जिनका योगीजन ध्यान करते हैं। जीव चाहे कितना बड़ा-चढ़ा क्यों न हो, परम पुरुष भगवान् को नहीं समझ सकता, क्योंकि वे छहों ऐश्वर्यों से युक्त अनन्त अर्थात् असीम हैं।

यदोपरामो मनसो नामरूप-

रूपस्य दृष्टस्मृतिसम्प्रमोषात् ।

य ईयते केवलया स्वसंस्थया

हंसाय तस्मै शुचिसद्गने नमः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब समाधि में; उपरामः—पूर्ण विराम; मनसः—मन का; नाम-रूप—भौतिक नाम तथा रूप; रूपस्य—उसका जिससे वे प्रकट होते हैं; दृष्ट—भौतिक दृष्टि का; स्मृति—तथा स्मरण का; सम्प्रमोषात्—विनाश के कारण; यः—जो (भगवान्); ईयते—अनुभव किया जाता है; केवलया—आध्यात्मिक; स्व-संस्थया—अपने आदि रूप से; हंसाय—परम विशुद्ध को; तस्मै—उस; शुचि-सद्गने—जो आध्यात्मिक अस्तित्व की शुद्ध अवस्था में ही अनुभव किया जाता है; नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

जब मनुष्य की चेतना स्थूल तथा सूक्ष्म भौतिक जगत के कल्मष से पूरी तरह शुद्ध हो जाती है और कार्य करने तथा स्वप्न देखने की अवस्थाओं से विचलित नहीं होती तथा जब मन सुषुप्ति अर्थात् गहरी नीद में लीन नहीं होता तो वह समाधि के पद को प्राप्त होता है। तब उसकी भौतिक दृष्टि तथा मन की स्मृतियाँ, जो नामों तथा रूपों को प्रकट करती हैं, विनष्ट हो जाती हैं। केवल ऐसी ही समाधि में भगवान् प्रकट होते हैं। अतः हम उन भगवान् को नमस्कार करते हैं, जो उस अकलुषित दिव्य अवस्था में देखे जाते हैं।

तात्पर्य : ईश-साक्षात्कार की दो अवस्थाएँ हैं। एक सुज्ञेयम् कहलाती है, अर्थात् जो आसानी से समझ में आ जाये (सामान्य तथा मानसिक चिन्तन से) तथा दूसरी दुर्ज्ञेयम् कहलाती है, जो कठिनाई से ही समझी जाती है। परमात्मा के साक्षात्कार तथा ब्रह्म के साक्षात्कार को सुज्ञेयम् माना जाता है, किन्तु भगवान् का साक्षात्कार दुर्ज्ञेयम् है। जैसाकि यहाँ पर वर्णन किया गया है जब मनुष्य मन के कार्यों को—सोचने, अनुभव करने तथा इच्छा करने को त्याग—देता है अथवा दूसरे शब्दों में, जब मानसिक चिन्तन रुक जाता है, तो उसे भगवान् का साक्षात्कार होता है। यह दिव्य साक्षात्कार या अनुभूति सुषुप्ति अर्थात् गहरी निद्रा से भी ऊपर है। हम अपनी स्थूल बद्धावस्था में वस्तुओं को भौतिक अनुभव तथा स्मृति के द्वारा इन्द्रियगोचर करते हैं और सूक्ष्म अवस्था में हम जगत की अनुभूति स्वप्न में करते हैं। देखने की विधि में स्मृति भी निहित रहती है और वह सूक्ष्म

रूप में भी विद्यमान रहती है। स्थूल अनुभव तथा स्वप्नों के ऊपर सुषुप्ति है और जब कोई सुषुप्ति को लाँघकर पूर्णतया आध्यात्मिक पद को प्राप्त होता है, तो उसे समाधि, विशुद्ध सत्त्व या वसुदेव सत्त्व प्राप्त होता है, जिसमें भगवान् के दर्शन होते हैं।

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद्ग्राह्यामिन्द्रियैः—जब तक कोई द्विधा में, ऐन्द्रिय पद पर, जो स्थूल हो या सूक्ष्म, स्थित रहता है, तब तक आदि भगवान् का साक्षात्कार असम्भव है। सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः, किन्तु जब कोई अपनी इन्द्रियों को भगवान् की सेवा में लगाता है—विशेषतया जब वह अपनी जीभ को हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करने में लगाता है तथा वह सेवाभाव से केवल कृष्ण-प्रसाद का आस्वादन करने में लगा रहता है, तो भगवान् प्रकट होते हैं। इसका संकेत इस श्लोक में शुचि सद्गने शब्दों से होता है। शुचि का अर्थ है “शुद्ध”। अपनी इन्द्रियों से सेवा करने के भाव से मनुष्य का सारा जीवन शुचिसद्ग अर्थात् अकलुषित शुद्धि का पद बन जाता है। इसलिए दक्ष भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं, जो शुचिसद्ग के पद पर प्रकट होते हैं। इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर श्रीमद्भागवत (१०.१४.६) से ब्रह्मा की यह स्तुति उद्धृत करते हैं—*तथापि भूमन् महिमागुणस्य ते विबोद्धुमर्हत्यम-लान्तरात्मभिः*—हे प्रभो! जिसका हृदय पूर्णतया शुद्ध हो चुका है, वही आपके दिव्य गुणों का तथा आपके कार्यों की महानता को समझ सकता है।

मनीषिणोऽन्तर्हृदि सन्निवेशितं
स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्धिः ।
वह्निं यथा दारुणि पाञ्चदश्यं
मनीषया निष्कर्षन्ति गूढम् ॥ २७ ॥
स वै ममाशेषविशेषमाया
निषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
स सर्वनामा स च विश्वरूपः
प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

मनीषिणः—महान् विद्वान् ब्राह्मण जो अनुष्ठानों तथा यज्ञों को सम्पन्न करे; अन्तः-हृदि—हृदय के भीतर; सन्निवेशितम्—स्थित होते हुए; स्व-शक्तिभिः—अपनी आध्यात्मिक शक्तियों से; नवभिः—नौ भिन्न-भिन्न भौतिक शक्तियों से भी (प्रकृति, पूर्ण भौतिक शक्ति, अहंकार, मन तथा पाँच इन्द्रिय विषय); च—और (पाँच स्थूल भौतिक तत्त्वों तथा दस कार्थेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय); त्रिवृद्धिः—प्रकृति के तीनों भौतिक गुणों द्वारा; वह्निम्—अग्नि; यथा—जिस तरह; दारुणि—काष्ठ के भीतर; पाञ्चदश्यम्—सामिधेनि मंत्र नामक पन्द्रह मंत्रों के उच्चारण से उत्पन्न; मनीषया—शुद्ध बुद्धि द्वारा; निष्कर्षन्ति—निचोड़ते हैं; गूढम्—यद्यपि प्रकट न करते हुए; सः—भगवान्; वै—निस्सन्देह; मम—मेरे प्रति; अशेष—समस्त; विशेष—किस्में; माया—माया की; निषेध—निषेध विधि द्वारा; निर्वाण—मुक्ति का; सुख-अनुभूतिः—जो दिव्य आनन्द द्वारा अनुभव किया जाता है; सः—भगवान्; सर्व-नामा—सभी नामों का स्रोत; सः—वह, भगवान्; च—भी; विश्व-रूपः—ब्रह्माण्ड का विराट रूप; प्रसीदताम्—दयालु हो; अनिरुक्त—अचिन्त्य; आत्म-शक्तिः—समस्त आध्यात्मिक शक्तियों का आगार।

जिस तरह कर्मकाण्ड तथा यज्ञ करने में निपुण प्रकांड विद्वान् ब्राह्मण पन्द्रह सामिधेनी मंत्रों का उच्चारण करके काष्ठ के भीतर सुप्त अग्नि को बाहर निकाल सकते हैं और इस तरह वैदिक मंत्रों की दक्षता को सिद्ध करते हैं, उसी तरह जो लोग कृष्णभावनामृत में वस्तुतः बड़े-चढ़े होते हैं—दूसरे शब्दों में, जो कृष्णभावनाभावित होते हैं—वे परमात्मा को ढूँढ सकते हैं, जो अपनी आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा हृदय के भीतर स्थित रहते हैं। हृदय प्रकृति के तीनों गुणों से तथा नौ भौतिक तत्त्वों (प्रकृति, कुल भौतिक शक्ति, अहंकार, मन तथा इन्द्रिय तृप्ति के पाँचों विषय) एवं पाँच भौतिक तत्त्वों तथा दस इन्द्रियों द्वारा आच्छादित रहता है। ये सत्ताईस तत्त्व मिलकर भगवान् की बहिरंगा शक्ति का निर्माण करते हैं। बड़े बड़े योगी भगवान् का ध्यान करते हैं, जो परमात्मा रूप में हृदय के भीतर स्थित हैं। वह परमात्मा मुझ पर प्रसन्न हों। जब कोई भौतिक जीवन की असंख्य विविधताओं से मुक्ति के लिए उत्सुक होता है, तो परमात्मा का साक्षात्कार होता है। वस्तुतः उसे ऐसी मुक्ति तब मिलती है जब वह भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लग जाता है और अपनी सेवा प्रवृत्ति के कारण भगवान् का साक्षात्कार करता है। भगवान् को उन अनेक आध्यात्मिक नामों से सम्बोधित किया जा सकता है, जो भौतिक इन्द्रियों के लिए अकल्पनीय हैं। वे भगवान् मुझ पर कब प्रसन्न होंगे?

तात्पर्य : इस श्लोक की टीका करते हुए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर *दुर्विज्ञेयम्* शब्द का प्रयोग करते हैं जिसका अर्थ है “समझने में अति कठिन।” *भगवद्गीता* (७.२८) में जीवन की

शुद्ध अवस्था का वर्णन हुआ है, जिसमें कृष्ण कहते हैं—

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

“जिन मनुष्यों ने पूर्वजन्मों में तथा इस जन्म में पुण्यकर्म किये हैं और जिनके पापकर्मों का पूर्णतया उच्छेदन हो चुका होता है, वे मोह के द्वन्द्वों से मुक्त हो जाते हैं और संकल्पपूर्वक मेरी सेवा में तत्पर होते हैं।”

भगवद्गीता में ही अन्यत्र (९.१४) भगवान् कहते हैं—

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।

नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

“ये महात्मा मेरी महिमा का नित्य कीर्तन करते हुए, दृढ़ संकल्प के साथ प्रयास करके, मुझे नमस्कार करते हुए, भक्तिभाव से निरन्तर मेरी पूजा करते हैं।”

मनुष्य समस्त भौतिक अवरोधों को लाँघने के बाद भगवान् को समझ सकता है। इसलिए भगवान् कृष्ण ने गीता (७.३) में यह भी कहा है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

“कई हजारों मनुष्यों में से कोई एक सिद्धि के लिए प्रयत्नशील होता है और इस तरह सिद्धि प्राप्त करने वालों में से मुश्किल से कोई एक मुझे वास्तव में जान पाता है।”

भगवान् कृष्ण को समझ पाने के लिए मनुष्य को कठिन तपस्या करनी होती है, किन्तु भक्ति का मार्ग पूर्ण है, अतएव इस विधि का पालन करने से मनुष्य आसानी से आध्यात्मिक पद को प्राप्त करके भगवान् को समझ सकता है। इसकी भी पुष्टि भगवद्गीता (१८.५५) में हुई है जहाँ कृष्ण कहते हैं—

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः ।

ततो मा तत्त्वतो ज्ञात्वा वशते तदनन्तरम् ॥

“केवल भक्ति से मुझ भगवान् को यथारूप में जाना जा सकता है। और जब मनुष्य ऐसी भक्ति में पूर्णतया भावनाभावित हो जाता है, तो वह वैकुण्ठलोक में प्रवेश कर सकता है।”

इस तरह यद्यपि विषय *दुर्विज्ञेयम्* अर्थात् समझ पाने में अतीव मुश्किल है, किन्तु निर्धारित विधि का पालन करने से यह आसान बन जाता है। भगवान् का सम्पर्क शुद्ध भक्ति के माध्यम से ही सम्भव है, जिसकी शुरुआत *श्रवणं कीर्तनं विष्णोः* से होती है। इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर *श्रीमद्भागवत* का यह श्लोक (२.८.५) उद्धृत करते हैं—*प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्।* श्रवण तथा कीर्तन की विधि हृदय के भीतर प्रवेश करती है और इस तरह मनुष्य शुद्ध भक्त बन जाता है। इस विधि को चालू रखने पर वह दिव्य प्रेम की अवस्था को प्राप्त होता है और तब वह भगवान् के दिव्य नाम, रूप, गुण तथा लीलाओं का प्रशंसक बन जाता है। दूसरे शब्दों में, भक्ति द्वारा शुद्ध भक्त भगवान् की विविध शक्तियों के रूप में अनेक भौतिक अवरोधों के आने पर भी भगवान् का दर्शन करने में समर्थ होता है। भक्त इन अवरोधों के बीच आसानी से गुजरता हुआ भगवान् के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आता है। आखिर, इन श्लोकों में वर्णित भौतिक अवरोध भगवान् की विविध शक्तियाँ ही तो होती हैं। जब भक्त भगवान् का दर्शन करने के लिए उत्सुक होता है, तो वह उनसे प्रार्थना करता है—

अपि नन्दतनुज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।

कृपया तव पादपंकजस्थितधूलीसदृशं विचिन्तय ॥

“हे महाराज नन्द के पुत्र (कृष्ण)! मैं आपका नित्य सेवक हूँ फिर भी न जाने कैसे मैं जन्म-मृत्यु के सागर में गिर गया हूँ! कृपया मुझे इस मृत्यु के सागर से निकालकर अपने चरणकमलों पर एक धूलि कण के रूप में रख लीजिये।” भगवान् भक्त पर प्रसन्न होकर उसके सारे भौतिक अवरोधों को आध्यात्मिक सेवा में बदल देते हैं। इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर *विष्णु पुराण* का यह श्लोक उद्धृत करते हैं—

ह्लादिनी सन्धिनी सम्बित् त्वय्येका सर्वसंस्थितौ ।

ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते ॥

भौतिक जगत में भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति तापकरी अर्थात् “कष्ट देने वाली” के रूप में प्रकट होती है। हर कोई सुख के लिए लालायित रहता है, किन्तु सुख जो कि भगवान् की ह्लादिनी शक्ति से मूलतः उत्पन्न होता है, भौतिक जगत में भौतिक कार्यों के कारण भगवान् की यह ह्लादिनी शक्ति दुख का कारण (ह्लादतापकरी) बन जाती है। भौतिक जगत में मिथ्या सुख ही दुख का कारण है, किन्तु जब सुख के लिए किये गये प्रयत्न भगवान् की तुष्टि की दिशा में निर्देशित होते हैं, तो दुख का यह तापकरी तत्त्व समाप्त हो जाता है। इस सम्बन्ध में जो उदाहरण दिया जाता है, वह है कि काठ से अग्नि उत्पन्न करना अतीव कठिन है, किन्तु जब अग्नि उत्पन्न हो जाती है, तो वह काठ को भी भस्म कर देती है। दूसरे शब्दों में, जो लोग भक्ति से रहित हैं उनके लिए भगवान् की अनुभूति कर पाना अत्यन्त कठिन है, किन्तु भक्त के लिए हर काम सरल हो जाता है और इस तरह वह भगवान् से सरलता से मिल सकता है।

यहाँ पर ये स्तुतियाँ बतलाती हैं कि भगवान् का स्वरूप भौतिक स्वरूप की सीमा के परे है, अतएव वह अचिन्त्य है। किन्तु भक्त तो यह प्रार्थना करता है, “हे प्रभु! आप मुझसे प्रसन्न हों जिससे मैं आपके दिव्य रूप तथा शक्ति का सरलता से दर्शन कर सकूँ।” अभक्त गण नेति नेति के वादविवाद द्वारा परब्रह्म को समझने का प्रयास करते हैं। निषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः—किन्तु भक्त एकमात्र भगवन्नाम का कीर्तन करके ऐसे श्रमसाध्य चिन्तन से अपने को दूर रखता है और सरलता से भगवान् की अनुभूति करता है।

यद्यन्निरुक्तं वचसा निरूपितं

धियाक्षभिर्वा मनसोत यस्य ।

मा भूत्स्वरूपं गुणरूपं हि तत्तत्

स वै गुणापायविसर्गलक्षणः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

यत् यत्—जो भी; निरुक्तम्—कथित; वचसा—शब्दों से; निरूपितम्—सुनिश्चित; धिया—तथाकथित ध्यान या बुद्धि से; अक्षभिः—इन्द्रियों से; वा—अथवा; मनसा—मन से; उत—निश्चय ही; यस्य—जिसका; मा भूत्—नहीं हो सकता; स्वरूपम्—भगवान् का वास्तविक रूप; गुण-रूपम्—तीनों गुणों से युक्त; हि—निस्सन्देह; तत् तत्—वह; सः—वह भगवान्; वै—निस्सन्देह; गुण-अपाय—तीन गुणों से बनी हुई हर वस्तु के संहार का कारण; विसर्ग—तथा सृष्टि; लक्षणः—के रूप में प्रकट।

भौतिक ध्वनियों द्वारा व्यक्त, भौतिक बुद्धि द्वारा सुनिश्चित तथा भौतिक इन्द्रियों द्वारा अनुभव की गई अथवा भौतिक मन के भीतर गढ़ी गई कोई भी वस्तु भौतिक प्रकृति के गुणों के प्रभाव के अतिरिक्त कुछ नहीं होती, इसलिए भगवान् के असली स्वभाव से उसका किसी तरह का सम्बन्ध नहीं होता। परमेश्वर इस भौतिक जगत की सृष्टि के परे हैं, क्योंकि वे भौतिक गुणों तथा सृष्टि के स्रोत हैं। सभी कारणों के कारण होते हुए, वे सृष्टि के पूर्व तथा सृष्टि के पश्चात् विद्यमान रहते हैं। मैं उन्हें सादर प्रणाम करना चाहता हूँ।

तात्पर्य : जो भगवान् से सम्बद्ध नामों, रूपों, गुणों या साज-सामग्री को गढ़ता है, वह उन्हें नहीं समझ सकता, क्योंकि वे सृष्टि से परे हैं। भगवान् हर वस्तु के स्रष्टा हैं जिसका अर्थ है कि वे सृष्टि के पूर्व उपस्थित थे। दूसरे शब्दों में, उनका नाम, रूप तथा गुण भौतिक रूप से उत्पन्न जीव नहीं हैं। वे सदैव दिव्य रहते हैं। अतएव अपने भौतिक मनोरथों, ध्वनियों तथा विचारों से हम भगवान् को सुनिश्चित नहीं कर सकते। इसकी व्याख्या अतः श्रीकृष्णनामादिन भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः श्लोक में हुई है।

यहाँ पर प्राचेतस दक्ष ब्रह्म की स्तुति कर रहे हैं—भौतिक सृष्टि के भीतर किसी व्यक्ति की नहीं। एकमात्र मूर्ख तथा धूर्त ईश्वर को भौतिक सृष्टि समझते हैं। इसकी पुष्टि स्वयं भगवान् ने भगवद्गीता (९.११) में की है—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।

परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥

“जब मैं मनुष्य रूप में अवतरित होता हूँ तो मूर्ख मेरा उपहास करते हैं। वे मुझ परमेश्वर के दिव्य स्वभाव को नहीं जानते।” इसलिए मनुष्य को चाहिए कि ऐसे पुरुष से ज्ञान प्राप्त करे

जिसके समक्ष भगवान् प्रकट हो चुके हों। भगवान् के लिए काल्पनिक नाम या रूप निर्मित करने का महत्त्व नहीं है। श्रीपाद शंकराचार्य निर्विशेषवादी थे, किन्तु तो भी उन्होंने कहा—*नारायणः परोऽव्यक्तात्*—नारायण या भगवान् इस भौतिक जगत के व्यक्ति नहीं हैं। हम नारायण को भौतिक उपाधि नहीं प्रदान कर सकते, जैसाकि मूर्ख लोग *दरिद्रनारायण* की बात करते समय प्रयास करते हैं। नारायण सदैव दिव्य हैं, इस भौतिक सृष्टि से परे। वे *दरिद्रनारायण* कैसे हो सकते हैं? दरिद्रता इस जगत में पाई जाती है, किन्तु आध्यात्मिक जगत में दरिद्रता जैसी कोई वस्तु नहीं है। अतएव दरिद्रनारायण का विचार कोरी मनोकल्पना है।

दक्ष बहुत ही सावधानी से इंगित करते हैं कि भौतिक उपाधियाँ पूज्य भगवान् के नाम नहीं हो सकतीं—*यद् यन्निरुक्तं वचसा निरूपितम्। निरुक्त द्योतक है वैदिक कोश का। कोई व्यक्ति किसी शब्द-कोश की अभिव्यक्तियों को चुनने मात्र से भगवान् को ठीक से नहीं समझ सकता। भगवान् की स्तुति करते समय दक्ष अपनी पूजा के लिए भौतिक नामों तथा रूपों को विषयवस्तु नहीं बनाना चाहते, प्रत्युत वे भगवान् की पूजा करना चाहते हैं, जो भौतिक कोशों तथा नामों की सृष्टि के पहले विद्यमान थे। जैसा कि वेदों में पुष्टि की गई है—*यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह—* भगवान् के नाम, रूप, गुण तथा साज-सामग्री को भौतिक कोश द्वारा सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। किन्तु यदि कोई व्यक्ति भगवान् को समझने के दिव्य पद तक पहुँच जाता है, तो वह प्रत्येक वस्तु से, चाहे वह भौतिक हो अथवा आध्यात्मिक, भलीभाँति परिचित हो लेता है। इसकी पुष्टि एक दूसरे वैदिक मंत्र में हुई है—*तमेव विदित्वातिमृत्युमेति।* यदि कोई व्यक्ति भगवान् की कृपा से किसी तरह भगवान् की दिव्य स्थिति को समझ सकता है, तो वह शाश्वत बन जाता है। इसकी और आगे पुष्टि स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (४.९) में की है—*

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

“हे अर्जुन! जो मेरे आविर्भाव तथा कर्मों की दिव्य प्रकृति को जानता है, वह इस शरीर को

छोड़ने पर इस संसार में पुनः जन्म नहीं लेता, अपितु मेरे सनातन धाम को प्राप्त होता है।” भगवान् को केवल समझ लेने से मनुष्य जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि से परे चला जाता है। इसलिए श्रील शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को श्रीमद्भागवत (२.१.५) में सलाह दी है—

तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवान् ईश्वरो हरिः ।

श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभ्यम् ॥

“हे राजा भरत के वंशज! जो व्यक्ति सारे कष्टों से मुक्त होना चाहता है उसे उन भगवान् का श्रवण, महिमा गायन तथा स्मरण भी करना चाहिए, जो परमात्मा, नियन्ता तथा समस्त कष्टों से बचाने वाले हैं।”

यस्मिन्यतो येन च यस्य यस्मै

यद्यो यथा कुरुते कार्यते च ।

परावरेषां परमं प्राक्प्रसिद्धं

तद्ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—जिसमें (भगवान् या परम धाम में); यतः—जिससे (हर वस्तु उद्भूत है); येन—जिसके द्वारा (हर वस्तु निर्मित है); च—भी; यस्य—जिसकी (हर वस्तु है); यस्मै—जिसको (हर वस्तु अर्पित की जाती है); यत्—जो; यः—जो; यथा—जिस तरह; कुरुते—सम्पन्न करता है; कार्यते—कराया जाता है; च—भी; पर-अवरेषाम्—भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों जगत्ओं में; परमम्—परम; प्राक्—उद्गम; प्रसिद्धम्—हर एक को भलीभाँति ज्ञात; तत्—वह; ब्रह्म—परब्रह्म; तत् हेतुः—समस्त कारणों के कारण; अनन्यत्—अन्य कारण न होते हुए; एकम्—अद्वितीय।

परब्रह्म कृष्ण प्रत्येक वस्तु के परम आश्रय तथा उद्गम हैं। हर कार्य उन्हीं के द्वारा किया जाता है, हर वस्तु उन्हीं की है और हर वस्तु उन्हीं को अर्पित की जाती है। वे ही परम लक्ष्य हैं और चाहे वे स्वयं कार्य करते हों या अन्यो से कराते हों, वे परम कर्ता हैं। वैसे उच्च तथा निम्न अनेक कारण हैं, किन्तु समस्त कारणों के कारण होने से वे परब्रह्म कहलाते हैं, जो समस्त कार्यकलापों के पहले से विद्यमान थे। वे अद्वितीय हैं और उनका कोई अन्य कारण नहीं है। मैं उनको सादर प्रणाम करता हूँ।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण आदि कारण हैं जैसा कि *भगवद्गीता* में पुष्टि हुई है (*अहं सर्वस्य प्रभवः*)। यहाँ तक कि यह भौतिक जगत, जो प्रकृति के गुणों के अधीन संचालित होता है, भगवान् द्वारा उत्पन्न किया जाता है; इसलिए भौतिक जगत से भी उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि भौतिक जगत उनके शरीर का अंश न होता तो परम कारण स्वरूप भगवान् अपूर्ण होते। इसलिए हम सुनते हैं—*वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः*—यदि कोई जान लेता है कि वासुदेव ही समस्त कारणों के आदि कारण हैं, तो वह पूर्ण महात्मा बन जाता है।

ब्रह्म-संहिता (५.१) घोषित करती है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः ।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

“गोविन्द कहे जाने वाले कृष्ण परम नियन्ता हैं। उनका शरीर नित्य, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबों के उद्गम हैं। उनका कोई अन्य उद्गम नहीं, क्योंकि वे समस्त कारणों के आदि कारण हैं।” परब्रह्म (तद्ब्रह्म) समस्त कारणों के कारण हैं, किन्तु उनका कोई कारण नहीं है। *अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्*—गोविन्द अर्थात् कृष्ण समस्त कारणों के कारण हैं, किन्तु गोविन्द रूप में उनके प्राकट्य का कोई कारण नहीं है। गोविन्द विविध रूपों में विस्तार करते हैं फिर भी वे सारे रूप एक हैं। जैसाकि मध्वाचार्य ने पुष्टि की है—*अनन्यः सदृशाभावाद् एको रूपाद्यभेदतः*—कृष्ण का न तो कोई कारण है न कोई सादृश्य। वे एक हैं, क्योंकि उनके विविध रूप—*यथा स्वांश तथा विभिन्नांश*—उनसे अभिन्न हैं।

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै

विवादसंवादभुवो भवन्ति ।

कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं

तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूमने ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

यत्-शक्तयः—जिसकी नाना शक्तियाँ; वदताम्—विभिन्न दर्शनों को बताने वाली; वादिनाम्—वक्ताओं के; वै—निस्सन्देह; विवाद—तर्क का; संवाद—तथा रजामन्दी, विचार ऐक्य; भुवः—कारण; भवन्ति—हैं; कुर्वन्ति—उत्पन्न करते हैं; च—तथा; एषाम्—उनके (सिद्धान्तवादियों के); मुहुः—निरन्तर; आत्म-मोहम्—आत्मा के अस्तित्व के विषय में मोह; तस्मै—उसको; नमः—मेरा सादर नमस्कार; अनन्त—असीम; गुणाय—दिव्य गुणों वाले; भूमने—सर्वव्यापक प्रभु।

मैं उन सर्वव्यापक भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जो अनन्त दिव्य गुणों से युक्त हैं। वे विभिन्न मतों का प्रसार करने वाले समस्त दार्शनिकों के हृदय के भीतर से कार्य करते हुए उनसे उनकी ही आत्मा को भुलवाते हैं, कभी उनमें परस्पर मतैक्य कराते हैं, तो कभी मत भिन्नता कराते हैं। इस तरह वे इस भौतिक जगत में ऐसी स्थिति उत्पन्न करते हैं जिसमें वे किसी भी दार्शनिक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : अनादि काल से अथवा विराट जगत की सृष्टि काल से बद्धात्माओं ने दार्शनिक चिन्तन के विविध वर्ग बना रखे हैं, किन्तु भक्तों के साथ ऐसा नहीं है। अभक्तों में सृष्टि, पालन तथा संहार के विषय में भिन्न-भिन्न विचार हैं, अतएव वे *वादी* तथा *प्रतिवादी* कहलाते हैं। *महाभारत* के कथन से ज्ञात होता है कि *मुनि* या चिन्तक अनेक हैं—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम् ॥

सारे चिन्तकों में मतभेद होना आवश्यक हैं अन्यथा परम कारण को सुनिश्चित करने वाले इतने विरोधी वर्ग क्यों होते ?

दर्शन का अर्थ है परम कारण की खोज। *वेदान्त सूत्र* ने अत्यन्त तार्किक बात कही है *अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा*—मानव जीवन परम कारण को समझने के लिए मिला है। भक्तजन स्वीकार करते हैं कि परम कारण कृष्ण हैं, क्योंकि इस निष्कर्ष का समर्थन समस्त वैदिक वाङ्मय द्वारा तथा स्वयं कृष्ण द्वारा भी किया गया है, जो यह कहते हैं—*अहं सर्वस्य प्रभवः*—मैं हर वस्तु का स्रोत हूँ। भक्तों को हर वस्तु के चरम कारण को समझने में कोई समस्या नहीं उठती, किन्तु अभक्तों को अनेक विरोधी तत्त्वों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि जो भी प्रमुख दार्शनिक बनना चाहता है, वह अपना मार्ग खोजता है। भारत में दार्शनिकों के अनेक वर्ग हैं यथा द्वैतवादी, अद्वैतवादी, वैशेषिक, मीमांसक, मायावादी तथा स्वभाववादी। इनमें से हर एक अन्यो का विरोध करता है।

इसी तरह पाश्चात्य देशों में भी अनेक दार्शनिक हैं, जो सृष्टि, जीवन, पालन तथा संहार के विषय में विभिन्न दृष्टिकोण रखते हैं। अतः यह असंदिग्ध तथ्य है कि सारे विश्व में असंख्य दार्शनिक हैं जिनमें से हर एक दूसरे का खण्डन करता है।

अब कोई यह पूछ सकता है कि जब दर्शन का लक्ष्य एक है, तो फिर इतने सारे दार्शनिक क्यों हैं? निस्सन्देह, परम कारण तो एक ही है—परब्रह्म। जैसा कि *भगवद्गीता* (१०.१२) में अर्जुन ने कृष्ण से कहा—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।

पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥

“आप परम भगवान्, परम धाम, परम पवित्र, परम सत्य हैं। आप नित्य दिव्य, आदि पुरुष, अजन्मा तथा सर्वव्यापी सौन्दर्य हैं।” किन्तु अभक्त चिन्तक एक परम कारण को (*सर्वकारणकारणम्*) को स्वीकार नहीं करते। चूँकि वे आत्मा तथा उसके कार्यों से अनजान हैं तथा विमोहित रहते हैं, यद्यपि उनमें से कुछ को आत्मा विषयक अस्पष्ट विचार होता है, किन्तु अनेक विवाद उठ खड़े होते हैं और दार्शनिक चिन्तक (मीमांसक) कभी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते। ये सारे चिन्तक भगवान् से ईर्ष्या करते हैं और जैसा कि *भगवद्गीता* (१६.१९-२०) में कृष्ण कहते हैं—

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।

क्षिपाम्यजस्रमशुभान् आसुरीष्वेव योनिषु ॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।

मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥

“जो लोग ईर्ष्यालु तथा अनिष्ट कारक हैं और नराधम हैं, उन्हें मैं निरन्तर भवसागर में विभिन्न आसुरी योनियों में डालता रहता हूँ। हे कुन्तीपुत्र! ऐसे व्यक्ति आसुरी योनि में बारम्बार जन्म ग्रहण करते हुए कभी भी मुझ तक पहुँच नहीं पाते। वे धीरे धीरे अधमतम गति में डूब जाते हैं।”

भगवान् के प्रति ईर्ष्या करने से अभक्तगण जन्म-जन्मांतर आसुरी परिवारों में उत्पन्न होते हैं। वे महान् अपराधी हैं और उनके अपराधों के ही कारण भगवान् उन्हें सदा मोहग्रस्त बनाये रखते हैं।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहम्—भगवान् उन्हें जानकर अंधकार में (आत्ममोहम्) रखते हैं।

व्यासदेव के पिता परम विद्वान पराशर ने भगवान् की व्याख्या इस प्रकार की है।

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः ।

भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥

आसुरी चिन्तक भगवान् के दिव्य गुणों, रूप, लीलाओं, बल, ज्ञान तथा ऐश्वर्य को नहीं समझ सकते, क्योंकि ये सभी भौतिक कल्मष से रहित हैं (विना हेयैर्गुणादिभिः)। ये चिन्तक भगवान् के अस्तित्व से ईर्ष्या करते हैं। जगदाहरनीश्वरम्—उनका निष्कर्ष यह है कि सम्पूर्ण विराट जगत का कोई नियन्ता नहीं है बल्कि यह स्वाभाविक रूप से कार्यशील है। इस तरह वे जन्म-जन्मांतर निरन्तर अंधकार में रखे जाते हैं और वे सभी कारणों के असली कारण को नहीं समझ सकते। दार्शनिक चिन्तन के अनेक पंथों के होने का यही कारण है।

अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयो-
रकस्थयोर्भिन्नविरुद्धधर्मणोः ।
अवेक्षितं किञ्चन योगसाङ्ख्ययोः
समं परं ह्यनुकूलं बृहत्तत् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

अस्ति—है; इति—इस प्रकार; न—नहीं; अस्ति—है; इति—इस प्रकार; च—तथा; वस्तु-निष्ठयोः—परम कारण के ज्ञान का अनुयायी; एक-स्थयोः—एक ही विषय, ब्रह्म को स्थापित करने से युक्त; भिन्न—अलग दिखाते हुए; विरुद्ध-धर्मणोः—तथा विरोधी; अवेक्षितम्—अनुभूत किया; किञ्चन—वह जो कुछ; योग-साङ्ख्ययोः—योग तथा सांख्य-दर्शन का; समम्—समान; परम्—दिव्य; हि—निस्सन्देह; अनुकूलम्—निवास स्थान; बृहत् तत्—वह परम कारण।

संसार मे दो वर्ग हैं—आस्तिक तथा नास्तिक। परमात्मा को मानने वाला आस्तिक सम्पूर्ण योग में आध्यात्मिक कारण को पाता है। किन्तु भौतिक तत्त्वों का मात्र विश्लेषण करने वाला सांख्यधर्मी निर्विशेषवाद के निष्कर्ष को प्राप्त होता है और परम कारण को,

चाहे वह भगवान् हो, परमात्मा हो या ब्रह्म ही क्यों न हो, स्वीकार नहीं करता। उल्टे, वह भौतिक प्रकृति के व्यर्थ बाह्य कार्यों में व्यस्त रहता है। किन्तु अन्ततोगत्वा दोनों वर्ग एक परम सत्य की स्थापना करते हैं, क्योंकि विरोधी कथन करते हुए भी उनका लक्ष्य एक ही परम कारण होता है। वे दोनों ही जिस एक परब्रह्म के पास पहुँचते हैं उन्हें मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : वस्तुतः इस तर्क के दो पक्ष हैं। कुछ कहते हैं ब्रह्म के कोई आकार नहीं होता (निराकार) और अन्य कहते हैं कि ब्रह्म के आकार है (साकार)। अतः “आकार” शब्द उभयनिष्ठ है यद्यपि कुछ इसे स्वीकार करते हैं (अस्ति या आस्तिक) जबकि अन्य लोग इसका निषेध करने का प्रयास करते हैं। (नास्ति अथवा नास्तिक)। चूँकि भक्त आकार को मानता है, जो दोनों के लिए उभयनिष्ठ है, अतः वह आकार को सादर नमस्कार करता है, भले ही अन्य लोग तर्क-वितर्क करते रहें कि ब्रह्म के आकार है या नहीं।

इस श्लोक में *योगसांख्ययोः* शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। योग का अर्थ भक्तियोग है, क्योंकि योगीजन सर्वव्यापक परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और उन्हें अपने हृदयों के भीतर देखने का प्रयास करते हैं। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (१२.१३.१) में कहा गया है—
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः। भक्त भगवान् के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आना चाहता है, जबकि योगी ध्यान द्वारा परमात्मा को अपने हृदय में ढूँढने का प्रयास करता है। इस तरह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों ही तरह से योग का अर्थ भक्तियोग है। किन्तु सांख्य का अर्थ है चिन्तनपरक ज्ञान के माध्यम से विराट जगत का भौतिक अध्ययन। यह सामान्यतया ज्ञानशास्त्र कहलाता है। सांख्यवादी निर्विशेष ब्रह्म से जुड़े होते हैं, किन्तु परम सत्य को तीन प्रकार से जाना जाता है। *ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते*—परम सत्य तो एक है, किन्तु कुछ लोग उसे निर्विशेष ब्रह्म के रूप में, कुछ सर्वत्र विद्यमान परमात्मा के रूप में तथा कुछ लोग भगवान् के रूप में स्वीकार करते हैं। केन्द्र बिन्दु तो परम सत्य है।

यद्यपि निर्विशेषवादी तथा सगुणवादी एक दूसरे से भिड़ते हैं, किन्तु वे उसी परब्रह्म, उसी परम सत्य पर केन्द्रित होते हैं। योगशास्त्र में कृष्ण का वर्णन इस प्रकार हुआ है—*कृष्णं पिशंगाम्बरम् अम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदाद्युदायुधम्*। इस तरह से भगवान् के आनन्द दायक शारीरिक स्वरूप, उनके अंगों तथा उनके वेश, का वर्णन किया जाता है। किन्तु *सांख्य-शास्त्र* भगवान् के दिव्य रूप के अस्तित्व को नहीं मानता। *सांख्य-शास्त्र* कहता है कि परब्रह्म के न तो हाथ हैं, न पाँव और न नाम—*ह्यनामरूपगुणपाणिपादमचक्षुरश्रोत्रमेकभद्वितीयमपि नामरूपाधिकं नास्ति*। वैदिक मंत्रों में *अपाणिपादो जवनोग्रहीत* कहा गया है अर्थात् परमेश्वर के पाँव तथा हाथ नहीं हैं, किन्तु जो कुछ भी उन्हें अर्पित किया जाता है उसे वे स्वीकार कर सकते हैं। वस्तुतः ऐसे कथन यह स्वीकार करते हैं कि ब्रह्म के हाथ पाँव हैं, किन्तु वे इस बात से इनकार करते हैं कि उनके भौतिक हाथ पाँव हैं। इसीलिए ब्रह्म को *अप्राकृत* कहा गया है। भगवान् कृष्ण के *सच्चिदानन्दविग्रह* है—ऐसा रूप जो नित्यता, ज्ञान तथा आनन्द रूप है, भौतिक रूप नहीं है। सांख्यवादी या ज्ञानी भौतिक रूप को नहीं मानते और भक्तगण भी भलीभाँति जानते हैं कि परम सत्य भगवान् के कोई भौतिक रूप नहीं है।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

“गोविन्द कहलाने वाले कृष्ण परम नियन्ता हैं। उनका शरीर नित्य, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबों के उद्गम हैं। उनका कोई अन्य उद्गम नहीं है, क्योंकि वे समस्त कारणों के आदि कारण हैं।” बिना हाथ पाँव वाले ब्रह्म की धारणा तथा हाथ पाँव युक्त ब्रह्म की धारणा स्पष्टतः परस्पर विरोधी हैं, किन्तु दोनों ही परम ब्रह्म पुरुष के विषय में एक ही सत्य पर जाकर मिल जाती हैं। इसलिए यहाँ पर प्रयुक्त *वस्तु निष्ठयोः* शब्द यह सूचित करता है कि योगी तथा सांख्यवादी दोनों ही सत्यता पर विश्वास करते हैं, किन्तु वे भौतिक तथा आध्यात्मिक पहचानों के विभिन्न दृष्टिकोणों से उसके विषय में वादविवाद करते हैं। परब्रह्म या *बृहत्* उभयनिष्ठ बिन्दु है। सांख्यवादी तथा योगी दोनों ही उसी एक ब्रह्म पर स्थित हैं, किन्तु अपने भिन्न दृष्टिकोणों के कारण

उनमें भेद है।

भक्तिशास्त्र में दिये गये निर्देश सही दिशा को इंगित करते हैं, क्योंकि *भगवद्गीता* में भगवान् कहते हैं *भक्त्या मामभिजानाति*—एकमात्र भक्ति द्वारा मैं जाना जा सकता हूँ। भक्तगण जानते हैं कि परम पुरुष के कोई भौतिक रूप नहीं है, जबकि ज्ञानी भौतिक रूप का केवल निषेध करते हैं। अतएव मनुष्य को भक्तिमार्ग की शरण लेनी चाहिए। तभी हर बात स्पष्ट हो सकेगी। ज्ञानी लोग विराट रूप पर मन को एकाग्र करते हैं। जो लोग नितान्त भौतिकतावादी हैं उनके लिए प्रारम्भ में यह अच्छी प्रणाली है, किन्तु लगातार विराट रूप के विषय में सोचने की आवश्यकता नहीं है। जब अर्जुन को कृष्ण का विराट रूप दिखाया गया तो उसने उसे देखा, किन्तु वह उसे निरन्तर देखना नहीं चाहता था। अतएव उसने भगवान् से प्रार्थना की कि वे अपने आदि द्विभुजी कृष्ण का रूप धारण कर लें। निष्कर्ष यह है कि विद्वानों को भगवान् के आध्यात्मिक रूप पर भक्तों की मन-एकाग्रता में कोई विरोधाभास नहीं दिखता (*ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः*)। इस प्रसंग में श्रील मध्वाचार्य कहते हैं कि अल्पज्ञ अभक्तजन सोचते हैं कि उनका निष्कर्ष अन्तिम है, किन्तु पूर्णतया विद्वान होने से भक्तगण यह समझ सकते हैं कि भगवान् चरम लक्ष्य हैं।

योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूल-

मनामरूपो भगवाननन्तः ।

नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभि-

र्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

यः—जो (भगवान्); अनुग्रह-अर्थम्—अपनी अहैतुकी कृपा दिखाने के लिए; भजताम्—उन भक्तों को जो सदैव भक्ति करते हैं; पाद-मूलम्—उनके दिव्य चरणकमलों को; अनाम—किसी भौतिक नाम के बिना; रूपः—या भौतिक रूप; भगवान्—भगवान्; अनन्तः—असीम, सर्वव्यापक तथा नित्य विद्यमान; नामानि—दिव्य नाम; रूपाणि—दिव्य रूप; च—भी; जन्म-कर्मभिः—दिव्य जन्म तथा कार्यों के साथ; भेजे—प्रकट करता है; सः—वह; मह्यम्—मुझ पर; परमः—परम; प्रसीदतु—कृपालु हों।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् जो कि अचिन्त्य रूप से ऐश्वर्यवान् हैं, जो सारे भौतिक नामों, रूपों तथा लीलाओं से रहित हैं तथा जो सर्वव्यापक हैं, उन भक्तों पर विशेषरूप से कृपालु

रहते हैं, जो उनके चरणकमलों की पूजा करते हैं। इस तरह वे विभिन्न लीलाओं सहित दिव्य रूपों तथा नामों को प्रकट करते हैं। ऐसे भगवान्, जो सच्चिदानन्द विग्रह हैं, मुझ पर कृपालु हों।

तात्पर्य : महत्त्वपूर्ण शब्द *अनामरूपः* के विषय में श्रीयुत श्रीधर स्वामी कहते हैं—
प्राकृतनामरूप रहितोऽपि। अनाम शब्द का अर्थ “बिना नाम का” यह सूचित करता है कि भगवान् का कोई भौतिक नाम नहीं है। अपने पुत्र को पुकारने के लिए नारायण नाम का उच्चारण करने मात्र से अजामिल को मोक्ष मिल गया। इसका अर्थ है कि नारायण कोई सामान्य संसारी नाम नहीं। यह अभौतिक है। इसलिए *अनाम* शब्द सूचित करता है कि भगवान् के नाम भौतिक जगत से सम्बन्धित नहीं होते। हरे कृष्ण महामंत्र की ध्वनि भौतिक ध्वनि नहीं। इसी तरह भगवान् का रूप, उनका प्राकट्य तथा कार्य सभी अभौतिक हैं। भक्तों तथा अभक्तों के प्रति अपनी अहैतुकी कृपा प्रदर्शित करने के लिए भगवान् कृष्ण इस भौतिक जगत में नाम, रूप तथा लीलाओं के साथ प्रकट होते हैं, जो सारे के सारे दिव्य हैं। इसे न समझ पाने वाले बुद्धिहीन व्यक्ति इन नामों, रूपों तथा लीलाओं को भौतिक समझते हैं और इसीलिए वे उनके नाम या रूप को स्वीकार करने से इनकार करते हैं।

अभक्त जो यह कहते हैं कि ईश्वर का कोई नाम नहीं है और भक्त जो यह जानते हैं कि उनका नाम भौतिक नहीं है—उन दोनों के निष्कर्ष जाँच करने पर व्यवहारतः एक जैसे हैं। भगवान् के कोई भौतिक नाम, रूप, जन्म, आविर्भाव या तिरोभाव नहीं होता, किन्तु फिर भी वे जन्म लेते हैं। जैसा कि *भगवद्गीता* (४.६) में कहा गया है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥

यद्यपि भगवान् अजन्मा (अज) हैं और उनके शरीर में भौतिक परिवर्तन नहीं होते, फिर भी वे अवतार के रूप में प्रकट होते हैं और अपने को सदैव दिव्य पद पर (शुद्ध सत्त्व) पर बनाये रखते

हैं। इस प्रकार वे अपने दिव्य रूप, नाम तथा कार्य प्रदर्शित करते हैं। यह अपने भक्तों के प्रति उनकी विशेष कृपा है। अन्य लोग इस बात को तर्क करते रहें कि परब्रह्म के रूप है कि नहीं, किन्तु जब भक्त भगवान् को साक्षात् देखता है, तो वह आध्यात्मिक रूप से भावमय हो जाता है।

अज्ञानी लोग कहते हैं कि भगवान् कुछ नहीं करते। वस्तुतः उनके पास करने के लिए कुछ भी नहीं है, फिर भी उन्हें सब कुछ करना होता है, क्योंकि उनकी स्वीकृति के बिना कोई कुछ नहीं कर सकता। किन्तु अज्ञानी यह नहीं देख सकता कि वे किस तरह कार्य करते हैं और किस तरह समूची प्रकृति उनके निर्देशन में कार्य करती है। उनकी विभिन्न शक्तियाँ पूर्णरूपेण कार्य करती हैं।

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
 न तत्समश्चाभ्याधिकश्च दृश्यते ।
 परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
 स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥

(श्वेताश्वर उपनिषद् ६.८)

उन्हें स्वयं कुछ भी नहीं करना पड़ता, क्योंकि उनकी शक्तियाँ पूर्ण हैं, अतः हर काम उनकी इच्छा से तुरन्त पूरा हो जाता है। जिन लोगों को भगवान् की अनुभूति नहीं हुई है, वे यह नहीं देख सकते कि वे किस तरह कार्य करते हैं, अतएव वे यह सोचते हैं कि यदि ईश्वर हो भी तो उसे न तो कुछ करना पड़ता है न ही उसका कोई विशेष नाम है।

वस्तुतः भगवान् के दिव्य कार्यकलापों के कारण उनका नाम पहले से विद्यमान है। भगवान् कभी-कभी गुणकर्मनाम कहलाते हैं, क्योंकि उनका नाम उनके दिव्य कार्यों के अनुसार रखा जाता है। उदाहरणार्थ, कृष्ण का अर्थ है “सर्व आकर्षक।” यह भगवान् का नाम है, क्योंकि उनके दिव्य गुण उन्हें अति आकर्षक बनाते हैं। छोटे बालक के रूप में उन्होंने गोवर्धन पर्वत उठाया और अपने बालपन में उन्होंने कई असुरों को मारा। ऐसे कार्य अति आकर्षक हैं, इसीलिए वे कभी-कभी

गिरिधारी, मधुसूदन, अघनिषूदन इत्यादि कहलाते हैं। चूँकि उन्होंने नन्द महाराज के पुत्र की भूमिका निभाई इसलिए वे नन्द-तनुज कहलाते हैं। ये नाम पहले से हैं, किन्तु बात यह है कि अभक्तगण भगवान् के नामों को समझ नहीं पाते, अतएव वे कभी-कभी *अनाम* अर्थात् बिना नाम के कहलाते हैं। इसका अर्थ हुआ कि उनके कोई भौतिक नाम नहीं हैं। उनके सारे कार्यकलाप आध्यात्मिक हैं, इसलिए उनके नाम आध्यात्मिक हैं।

सामान्यतया अल्पज्ञ लोग इस भाव में रहते हैं कि भगवान् के कोई रूप या आकार नहीं होता। इसलिए वे अपने आदि कृष्ण, सच्चिदानन्दविग्रह रूप में कुरुक्षेत्र युद्ध में भाग लेने के अपने लक्ष्य को तथा भक्तों की रक्षा करने और असुरों के विनाश की लीलाओं को पूरा करने के लिए प्रकट होते हैं (*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*)। यह तो उनकी कृपा है। जो लोग यह सोचते हैं कि भगवान् के कोई रूप नहीं है और करने के लिए उनके पास कोई काम नहीं है, उन्हें यह दिखाने के लिए कृष्ण आते हैं कि सचमुच वे काम करते हैं। वे इतने यशस्वी ढंग से कार्य करते हैं कि कोई अन्य व्यक्ति ऐसे असामान्य कार्य नहीं कर सकता। यद्यपि वे मनुष्य रूप में प्रकट हुए थे, किन्तु उन्होंने १६१०८ पत्नियों के साथ विवाह किया था, जो सामान्य व्यक्ति के बूते की बात नहीं है। भगवान् ऐसे कार्य लोगों को यह दिखाने के लिए करते हैं कि वे कितने महान् हैं, कितने वत्सल हैं और कितने दयालु हैं। यद्यपि उनका आदिनाम कृष्ण है (*कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्*) किन्तु वे असंख्य तरीकों से कार्य करते हैं इसलिए उनके कार्यों के अनुसार उनके हजारों नाम हैं।

यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां

यथाशयं देहगतो विभाति ।

यथानिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं

स ईश्वरो मे कुरुतां मनोरथम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; प्राकृतैः—निम्न श्रेणी के; ज्ञान-पथैः—पूजा के मार्गों द्वारा; जनानाम्—जीवों के; यथा-आशयम्—इच्छा के अनुसार; देह-गतः—हृदय के भीतर स्थित; विभाति—प्रकट होता है; यथा—जिस तरह; अनिलः—वायु; पार्थिवम्—

पृथ्वी का; आश्रितः—प्राप्त करते हुए; गुणम्—गुण (गंध तथा रंग इत्यादि); सः—वह; ईश्वरः—भगवान्; मे—मेरा; कुरुताम्—पूरा करे; मनोरथम्—(भक्ति के लिए) इच्छा ।

जिस तरह वायु भौतिक तत्त्वों के विविध गुण यथा फूल की गंध या वायु में धूल के मिश्रण से उत्पन्न विभिन्न रंग अपने साथ ले जाती है, उसी तरह भगवान् मनुष्य की इच्छाओं के अनुसार पूजा की निम्नतर प्रणालियों के माध्यम से प्रकट होते हैं, यद्यपि वे देवताओं के रूप में प्रकट होते हैं, अपने आदि रूप में नहीं। तो इन अन्य रूपों का क्या लाभ है? ऐसे आदि भगवान् मेरी इच्छाएँ परिपूर्ण करें।

तात्पर्य : निर्विशेषवादी कल्पना करते हैं कि विभिन्न देवता भगवान् के रूप हैं। उदाहरणार्थ, मायावादी पाँच देवताओं (*पञ्चोपासना*) की पूजा करते हैं। वे वास्तव में भगवान् के रूप में विश्वास नहीं करते, किन्तु पूजा के निमित्त वे किसी रूप को ईश्वर मान लेते हैं। सामान्यतया वे विष्णु का रूप, शिव का रूप, गणेश, सूर्यदेव तथा दुर्गा के रूपों की कल्पना करते हैं। यही *पञ्चोपासना* कहलाती हैं। किन्तु दक्ष किसी काल्पनिक रूप की नहीं, अपितु भगवान् कृष्ण के परम रूप की पूजा करना चाहते थे।

इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर भगवान् तथा एक सामान्य जीव के अन्तर का वर्णन करते हैं। जैसाकि पिछले किसी श्लोक में इंगित किया जा चुका है—*सर्वं पुमान् वेद गुणांश्च तज्ज्ञो न वेद सर्वज्ञमनन्तमीडे*—सर्वशक्तिमान भगवान् हर बात जानते हैं, किन्तु जीव वास्तव में भगवान् को नहीं जानता। जैसाकि कृष्ण ने *भगवद्गीता* में कहा है “मैं सब कुछ जानता हूँ, किन्तु कोई भी मुझे नहीं जानता।” भगवान् तथा सामान्य जीव में यही अन्तर है। *श्रीमद्भागवत* में एक स्तुति में महारानी कुन्ती कहती हैं—“हे प्रभु! आप भीतर तथा बाहर विद्यमान हैं, फिर भी कोई आपको देख नहीं सकता।”

बद्धात्मा ज्ञान अथवा कल्पना से भगवान् को नहीं समझ सकता। इसलिए मनुष्य को भगवत्कृपा से भगवान् को जानना चाहिए। वे अपने को प्रकट करते हैं, किन्तु वे कल्पना द्वारा नहीं समझे जा सकते। *श्रीमद्भागवत* (१०.१४.२९) में कहा गया है—

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय प्रसादलेशानुगृहीत एव हि ।

जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥

“हे प्रभु! यदि किसी को आपके चरणकमलों की कृपा का लेशांश भी प्राप्त हो जाये तो वह आपकी महानता को समझ सकता है। पर जो लोग भगवान् को समझने के लिए कल्पना करते हैं, वे आपको नहीं जान पाते, भले ही वे अनेक वर्षों तक वेदों का अध्ययन क्यों न करते रहें।”

यह शास्त्र का निर्णय है। एक सामान्य व्यक्ति बहुत बड़ा दार्शनिक हो सकता है और यह कल्पना कर सकता है कि परम सत्य क्या है, उसका रूप क्या है और वह कहाँ पर विद्यमान है, किन्तु वह इन सत्यों को समझ नहीं सकता। *सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः।* केवल भक्ति के द्वारा मनुष्य भगवान् को समझ सकता है। इसकी व्याख्यां स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (१८.५५) में की है। *भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः*—एकमात्र भक्ति से भगवान् को यथारूप में जाना जा सकता है। अज्ञानी लोग भगवान् के रूप के विषय में कल्पना करना या उनके रूप को गढ़ना चाहते हैं, किन्तु भक्तगण वास्तविक भगवान् की पूजा करना चाहते हैं। इसलिए दक्ष स्तुति करते हैं “कोई चाहे आपको साकार, निर्विशेष या काल्पनिक सोचे, किन्तु मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ कि वास्तव में आप जिस रूप में हैं उसी रूप में दर्शन पाने की मेरी इच्छा पूरी करें।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर टीका करते हैं कि यह श्लोक विशेषतया उन निर्विशेषवादियों के लिए हैं, जो यह सोचते हैं कि वे स्वयं ब्रह्म हैं, क्योंकि जीव तथा ईश्वर में कोई भेद नहीं है। मायावादी दार्शनिक सोचता है कि केवल एक परम सत्य है और वह भी वही परम सत्य है। वस्तुतः यह ज्ञान नहीं, अपितु मूर्खता है और यह श्लोक विशेषरूप से ऐसे मूर्ख लोगों के निमित्त है जिनके ज्ञान को माया ने हर लिया है (*माययापहत ज्ञानाः*)। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि ऐसे *ज्ञानीमानिनः* लोग अपने को बहुत बड़ा-चढ़ा मानते हैं, लेकिन वास्तव में वे अज्ञानी होते हैं।

इस श्लोक के विषय में श्रील मध्वाचार्य कहते हैं—

स्वदेहस्थं हरिं प्राहुरधमा जीवमेव तु ।

मध्यमाश्चाप्यनिर्णीतं जीवाद् भिन्नं जनार्दनम् ॥

मनुष्य तीन तरह के होते हैं— *अधम*, *मध्यम* तथा *उत्तम*। अधम सोचते हैं कि ईश्वर तथा जीव में कोई अन्तर नहीं है, सिवाय इसके कि जीव उपाधियों के अधीन है, जबकि परब्रह्म के कोई उपाधि नहीं होती। उनके मत से ज्योंही भौतिक शरीर की उपाधियाँ विलीन हो जाती हैं जीव ब्रह्म से मिल जाता है। वे *घटाकाश-पटाकाश* का तर्क देते हैं जिसमें शरीर की उपमा उस घट (बर्तन) से दी जाती है, जिसके भीतर तथा बाहर आकाश है। जब यह घट टूटता है, तो भीतर का आकाश बाहरी आकाश से एकाकार हो जाता है, अतः निर्विशेषवादी कहते हैं कि जीव ब्रह्म से एकाकार हो जाता है। यह उनका तर्क है, किन्तु श्रील मध्वाचार्य कहते हैं कि ऐसा तर्क अधम लोग प्रस्तुत करते हैं। दूसरी श्रेणी (मध्यम) के लोग यह निश्चित नहीं कर पाते कि ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप क्या है, किन्तु वे यह मानते हैं कि ऐसा ब्रह्म है, जो सामान्य जीव के कार्यों का नियंत्रण करता है। ऐसे दार्शनिक सामान्य माने जाते हैं। किन्तु सर्वश्रेष्ठ वे हैं, जो परमेश्वर को समझते हैं (*सच्चिदानन्दविग्रह*)। *पूर्णानन्दादिगुणकं सर्वजीव विलक्षणम्*—उनका स्वरूप पूर्णरूपेण आध्यात्मिक, आनन्द से पूर्ण तथा बद्धात्मा या किसी अन्य जीव से सर्वथा भिन्न है। *उत्तमास्तु हरिं प्राहुस्तारतभ्येन तेषुच*—ऐसे दार्शनिक सर्वश्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि भगवान् विभिन्न भौतिक गुणों वाले पूजकों के समक्ष भिन्न-भिन्न रूपों में अपने को प्रकट करते हैं। वे जानते हैं कि तीन करोड़ तीस लाख देवता बद्धात्मा को यह आश्वस्त करने के लिए कि एक परम शक्ति है और वे उसे इनमें से किसी एक को देवता को पूजने के लिए प्रेरित करने के लिए हैं, जिससे वह भक्तों की संगति से यह समझ सके कि कृष्ण भगवान् हैं। जैसा कि *भगवद्गीता* में भगवान् कृष्ण कहते हैं—*मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय*—मुझसे श्रेष्ठ कोई सत्य नहीं। *अहं आदिर्हि देवानाम्*—मैं सारे देवताओं का उद्गम हूँ। *अहं सर्वस्य प्रभवः*—मैं सबों से, यहाँ तक कि ब्रह्मा, शिव तथा

अन्य देवताओं से भी श्रेष्ठ हूँ। ये सब शास्त्र के निष्कर्ष हैं और जो व्यक्ति इन निष्कर्षों को स्वीकार करता है उसे उच्चकोटि का दार्शनिक माना जाना चाहिए। ऐसा दार्शनिक जानता है कि भगवान् देवताओं के स्वामी हैं (देवदेवेश्वरं सूत्रमानन्दं प्राणवेदिनः) ।

श्रीशुक उवाच

इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन्नघमर्षणे ।
 प्रादुरासीत्कुरुश्रेष्ठ भगवान्भक्तवत्सलः ॥ ३५ ॥
 कृतपादः सुपर्णासे प्रलम्बाष्टमहाभुजः ।
 चक्रशङ्खासिचर्मेषुधनुःपाशगदाधरः ॥ ३६ ॥
 पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेक्षणः ।
 वनमालानिवीताङ्गो लसच्छ्रीवत्सकौस्तुभः ॥ ३७ ॥
 महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः ।
 काञ्च्यङ्गुलीयवलयनूपुराङ्गदभूषितः ॥ ३८ ॥
 त्रैलोक्यमोहनं रूपं बिभ्रत्त्रिभुवनेश्वरः ।
 वृतो नारदनन्दाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ।
 स्तूयमानोऽनुगायद्भिः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; स्तुतः—प्रशंसित होकर; संस्तुवतः—स्तुति कर रहे दक्ष का; सः—वह भगवान्; तस्मिन्—उस; अघमर्षणे—अघमर्षण नामक पवित्र स्थान पर; प्रादुरासीत्—प्रकट हुआ; कुरु-श्रेष्ठ—हे कुरुवंश में सर्वश्रेष्ठ; भगवान्—भगवान्; भक्त-वत्सलः—अपने भक्तों के प्रति अत्यन्त दयालु; कृत-पादः—जिसके चरणकमल रखे थे; सुपर्णा-अंसे—उनके वाहन गरुड़ के कंधे पर; प्रलम्ब—अत्यन्त लम्बे; अष्ट-महा-भुजः—आठ बलशाली भुजाओं वाले; चक्र—चक्र; शङ्ख—शंख; असि—तलवार; चर्म—ढाल; इषु—बाण; धनुः—धनुष; पाश—रस्सी; गदा—गदा; धरः—धारण किये; पीत-वासाः—पीताम्बर सहित; घन-श्यामः—जिनेक शरीर का वर्ण गहरे नीले-काले रंग का था; प्रसन्न—अत्यन्त प्रसन्न; वदन—जिसका मुख; ईक्षणः—तथा चितवन; वन-माला—जंगली फूलों की माला से; निवीत-अङ्गः—जिसका शरीर गले से पाँव तक सजा हुआ था; लसत्—चमकता हुआ; श्रीवत्स-कौस्तुभः—कौस्तुभ मणि तथा श्रीवत्स चिह्न; महा-किरीट—विशाल मुकुट का; कटकः—वृत्त, मंडल; स्फुरत्—चमकता हुआ; मकर-कुण्डलः—मकर की आकृति के कान के कुण्डल; काञ्ची—पेटी सहित; अङ्गुलीय-अंगूठी; वलय—कंगन; नूपुर—पायल; अङ्गद—बिजावट; भूषितः—सुसज्जित; त्रै-लोक्य-मोहनम्—तीनों लोकों को मोहित करने वाला; रूपम्—उनका शारीरिक स्वरूप; बिभ्रत्—चमकता हुआ; त्रि-भुवन—तीनों लोकों का; ईश्वरः—परमेश्वर; वृतः—घिरा हुआ; नारद—नारद इत्यादि बड़े बड़े भक्तों से; नन्द-आद्यैः—तथा नन्द इत्यादि; पार्षदैः—नित्य संगियों से; सुर-यूथपैः—तथा देवताओं के प्रधानों द्वारा; स्तूयमानः—स्तुति किये जाने पर; अनुगायद्भिः—उनके पीछे पीछे गाते हुए; सिद्ध-गन्धर्व-चारणैः—सिद्धों, गन्धर्वों तथा चारणों द्वारा ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा : अपने भक्तों के प्रति अत्यधिक स्नेहिल भगवान् हरि दक्ष द्वारा की गई स्तुतियों से अत्यधिक प्रसन्न हुए, अतः वे अघमर्षण नामक पवित्र स्थान पर

प्रकट हुए। हे श्रेष्ठ कुरुवंशी महाराज परीक्षित! भगवान् के चरणकमल उनके वाहन गरुड़ के कंधों पर रखे थे और वे अपनी आठ लम्बी बलिष्ठ अतीव सुन्दर भुजाओं सहित प्रकट हुए। अपने हाथों में वे चक्र, शंख, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, रस्सी तथा गदा धारण किये थे—प्रत्येक हाथ में अलग-अलग हथियार थे और सबके सब चमचमा रहे थे। उनके वस्त्र पीले थे और उनके शरीर का रंग गहरा नीला था। उनकी आँखें तथा मुख अतीव मनोहर थे और उनके गले से लेकर पाँवों तक फूलों की लम्बी माला लटक रही थी। उनका वक्षस्थल कौस्तुभ मणि तथा श्रीवत्स चिह्न से सुशोभित था। उनके सिर पर विशाल गोल मुकुट था और उनके कान मछलियों के सदृश कुण्डलों से सुशोभित थे। ये सारे आभूषण असाधारण रूप से सुन्दर थे। भगवान् अपनी कमर में सोने की पेटी, बाहों में बिजावट, अंगुलियों में अँगूठियाँ तथा पाँवों में पायल पहने थे। इस तरह विविध आभूषणों से सुशोभित भगवान् हरि, जो तीनों लोकों के जीवों को आकर्षित करने वाले हैं, पुरुषोत्तम कहलाते हैं। उनके साथ नारद, नन्द जैसे महान् भक्त तथा स्वर्ग के राजा इन्द्र इत्यादि प्रमुख देवता एवं उच्चतर लोकों यथा सिद्धलोक, गन्धर्वलोक तथा चारणलोक के निवासी थे। भगवान् के दोनों ओर तथा उनके पीछे भी स्थित ये भक्त निरन्तर उनकी स्तुतियाँ कर रहे थे।

रूपं तन्महदाश्चर्यं विचक्ष्यागतसाध्वसः ।

ननाम दण्डवद्भूमौ प्रहृष्टात्मा प्रजापतिः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

रूपम्—दिव्य रूप; तत्—वह; महत्-आश्चर्यम्—अत्यधिक आश्चर्यजनक; विचक्ष्य—देखकर; आगत-साध्वसः—प्रारम्भ में भयभीत हुआ; ननाम—नमस्कार किया; दण्ड-वत्—डण्डे की तरह; भूमौ—भूमि पर; प्रहृष्ट-आत्मा—शरीर, मन तथा आत्मा से प्रसन्न होकर; प्रजापतिः—दक्ष नामक प्रजापति ने।

भगवान् के उस अद्भुत तथा तेजवान् स्वरूप को देखकर प्रजापति दक्ष पहले तो कुछ भयभीत हुए, किन्तु बाद में भगवान् को देखकर अतीव प्रसन्न हुए और उन्हें नमस्कार करने के लिए भूमि पर दण्डवत् गिर पड़े।

न किञ्चनोदीरयितुमशकतीव्रया मुदा ।
आपूरितमनोद्वारैर्हृदिन्य इव निझरैः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; किञ्चन—कोई वस्तु; उदीरयितुम्—कहने के लिए; अशकत्—समर्थ था; तीव्रया—अत्यधिक; मुदा—सुख; आपूरित—भरा हुआ; मनः-द्वारैः—इन्द्रियों के द्वारा; हृदिन्यः—नदियों; इव—सदृश; निझरैः—पर्वत से मूसलाधार वर्षा द्वारा ।

जिस तरह पर्वत से प्रवाहित होने वाले जल से नदियाँ भर जाती हैं उसी तरह दक्ष की सारी इन्द्रियाँ प्रसन्नता से पूरित हो गईं। अत्यधिक सुख के कारण दक्ष कुछ भी नहीं कह सके, अपितु भूमि पर पड़े रहे।

तात्पर्य : जब कोई व्यक्ति वास्तव में भगवान् की अनुभूति करता है या दर्शन करता है, तो वह पूर्ण सुख से पूरित हो जाता है। उदाहरणार्थ, जब ध्रुव महाराज ने भगवान् को अपने समक्ष देखा तो उन्होंने कहा स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे—हे प्रभु! मुझे आपसे कुछ भी नहीं माँगना है। अब मैं पूर्णतया तुष्ट हूँ। इसी तरह जब दक्ष प्रजापति ने अपने समक्ष भगवान् को देखा तो वे भूमि पर दण्ड के समान लेट गये और किसी वस्तु के लिए कहने या माँगने में असमर्थ हो गये।

तं तथावनतं भक्तं प्रजाकामं प्रजापतिम् ।
चित्तज्ञः सर्वभूतानामिदमाह जनार्दनः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस (प्रजापति दक्ष); तथा—उस तरह से; अवनतम्—अपने सामने नमित; भक्तम्—महान् भक्त को; प्रजा-कामम्—जनसंख्या बढ़ाने का इच्छुक; प्रजापतिम्—प्रजापति (दक्ष) को; चित्त-ज्ञः—हृदय की बात समझने वाला; सर्व-भूतानाम्—सारे जीवों के; इदम्—यह; आह—कहा; जनार्दनः—भगवान् ने, जो हर एक की इच्छाओं को पूरा कर सकते हैं।

यद्यपि प्रजापति दक्ष कुछ भी नहीं कह सके, किन्तु हर एक के हृदय की बात जानने वाले भगवान् ने जब अपने भक्त को इस प्रकार से नमित तथा जनसंख्या बढ़ाने की इच्छा से युक्त देखा तो उन्होंने उसे इस प्रकार से सम्बोधित किया।

श्रीभगवानुवाच

प्राचेतस महाभाग संसिद्धस्तपसा भवान् ।

यच्छ्रद्धया मत्परया मयि भावं परं गतः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; प्राचेतस—हे प्राचेतस; महा-भाग—हे परम भाग्यशाली; संसिद्धः—सिद्धिप्राप्त; तपसा—तुम्हारी तपस्या से; भवान्—आप; यत्—क्योंकि; श्रद्धया—अतीव श्रद्धा से; मत्-परया—जिसका लक्ष्य मैं हूँ; मयि—मुझमें; भावम्—भाव, आनन्द; परम्—परम; गतः—प्राप्त ।

भगवान् ने कहा : हे परम भाग्यशाली प्राचेतस! तुमने मुझ पर अपनी महती श्रद्धा के कारण परम भक्तिमय भाव को प्राप्त किया है। निस्सन्देह, तुम्हारी महती भक्ति के साथ-साथ तुम्हारी तपस्या के कारण तुम्हारा जीवन अब सफल है। तुमने पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर ली है।

तात्पर्य : जैसा कि भगवद्गीता (८.१५) में स्वयं भगवान् ने पुष्टि की है, जब किसी को भगवान् की अनुभूति करने का सौभाग्य प्राप्त होता है, तो वह सर्वोच्च सिद्धि तक पहुँचता है।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमश्वाश्रतम् ।

नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥

“मुझे प्राप्त करके महापुरुष, जो भक्तियोगी हैं, दुखों से पूर्ण इस अनित्य जगत में कभी नहीं लौटते, क्योंकि उन्हें परम सिद्धि प्राप्त हो चुकी होती है।” इसलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन मनुष्य को केवल भक्ति सम्पन्न करके सर्वोच्च सिद्धि की ओर जाने वाले मार्ग का अनुसरण करने की शिक्षा देता है।

प्रीतोऽहं ते प्रजानाथ यत्तेऽस्योद्धृंहणं तपः ।

ममैष कामो भूतानां यद्भूयासुर्विभूतयः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

प्रीतः—अत्यधिक प्रसन्न; अहम्—मैं; ते—तुमसे; प्रजा-नाथ—हे प्रजापति; यत्—क्योंकि; ते—तुम्हारा; अस्य—इस भौतिक जगत का; उद्धृंहणम्—वृद्धि करते हुए; तपः—तपस्या; मम—मेरी; एषः—यह; कामः—इच्छा; भूतानाम्—जीवों का; यत्—जो; भूयासुः—हो; विभूतयः—सभी प्रकार से उन्नति ।

हे प्रजापति दक्ष! तुमने संसार के कल्याण तथा वृद्धि के लिए घोर तपस्या की है। मेरी

भी यही इच्छा है कि इस जगत में हरेक प्राणी सुखी हो। इसलिए मैं तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हूँ, क्योंकि तुम सम्पूर्ण जगत के कल्याण की मेरी इच्छा को पूरी करने का प्रयत्न कर रहे हो।

तात्पर्य : भौतिक ब्रह्माण्ड के प्रत्येक प्रलय के बाद सारे जीव कारणोदकशायी विष्णु के शरीर में शरण लेते हैं और जब पुनः सृष्टि होती है, तो वे अपनी विविध योनियों में अपने-अपने कार्य पुनः चालू करने के लिए उनके शरीर से बाहर निकल आते हैं। आखिर यह सृष्टि की रचना इस तरह क्यों होती है कि सारे जीवों को भौतिक प्रकृति द्वारा उन पर लादे गये तीन प्रकार के कष्टों को भोगने के लिए बद्ध जीवन में रखा जाता है? यहाँ पर भगवान् दक्ष से कहते हैं, “तुम सारे जीवों को लाभ पहुँचाना चाहते हो और मेरी भी यही इच्छा है।” भौतिक जगत के सम्पर्क में आने वाले जीव सुधारे जाने के लिए होते हैं। इस जगत के सारे जीवों ने भगवान् की सेवा के विरुद्ध विद्रोह किया है, अतएव वे इस भौतिक जगत में बारम्बार जन्म लेने के लिए *नित्यबद्ध* के रूप में रहते हैं। हाँ, उनके मुक्त होने का अवसर प्राप्त है, किन्तु फिर भी बद्धजीव इस अवसर का लाभ नहीं उठाते और वे इन्द्रियभोग का जीवन बिताते रहते हैं और इस प्रकार पुनः पुनः जन्म-मृत्यु से दण्डित होते रहते हैं। यह प्रकृति का नियम है। *भगवद्गीता* (७.१४) में भगवान् कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

“प्रकृति के तीन गुणों वाली मेरी इस दैवी शक्ति को पार कर पाना कठिन है। किन्तु जो मेरे शरणागत हो जाते हैं, वे सरलता से इसे पार कर जाते हैं।” *भगवद्गीता* में ही अन्यत्र (१५.७) भगवान् कहते हैं—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

“इस बद्धजगत में सारे जीव विलग हुए मेरे शाश्वत अंश हैं। बद्ध जीवन के कारण वे मन

समेत छहों इन्द्रियों से घोर संघर्ष कर रहे हैं।” इस भौतिक जगत के अन्तर्गत जीव द्वारा जीवन-संघर्ष उसके विद्रोहात्मक स्वभाव के कारण है। जब तक जीव कृष्ण की शरण ग्रहण नहीं करता, वह इस संघर्षमय जीवन को चालू रखता है।

कृष्णभावनामृत आन्दोलन कोई सनक नहीं। यह एक प्रामाणिक आन्दोलन है, जिसका गन्तव्य हर बद्धजीव को कृष्णभावनामृत के पद तक उठाने का प्रयास करते हुए उनके कल्याण को बढ़ावा देना है। यदि कोई इस पद को प्राप्त नहीं होता तो वह निरन्तर भौतिक जगत में, कभी ऊपरी लोकों में तो कभी निम्नतर लोकों में, जाता रहता है। जैसाकि *चैतन्य-चरितामृत* (मध्य २०.११८) में पुष्टि हुई है—*कभु स्वर्गे उठाय, कभु नरके डुबाय*—कभी बद्धजीव अविद्या में उतर जाता है और कभी उससे अपेक्षाकृत छूटकर कुछ राहत पाता है। यह है बद्धजीव का जीवन।

प्रजापित दक्ष बद्धजीवों को उत्पन्न करके उन्हें मुक्ति के लिए अवसर प्रदान करने का लाभ प्रदान कराना चाहते हैं। मुक्ति का अर्थ है कृष्ण की शरण ग्रहण करना। यदि कोई कृष्ण की शरण में जाने का प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से सन्तानोत्पत्ति करता है, तो उसका पितृत्व बहुत उत्तम है। इसी तरह जब गुरु बद्धजीवों को कृष्णभावनाभावित होने का प्रशिक्षण देता है, तो उसका गुरुत्व सफल होता है। यदि कोई व्यक्ति बद्धजीवों को कृष्णभावनाभावित बनने का अवसर प्रदान करता है, तो उसके सारे कार्यों का समर्थन भगवान् करते हैं, जो अत्यधिक प्रसन्न होते हैं जैसाकि यहाँ पर कहा गया है (*प्रीतोऽहम्*)। पूर्ववर्ती आचार्यों के उदाहरणों का पालन करते हुए कृष्णभावनामृत आन्दोलन के समस्त सदस्यों को चाहिए कि बद्धजीवों को कृष्णभावनाभावित होने के लिए प्रेरित करें तथा उन्हें ऐसा करने की सारी सुविधाएँ प्रदान करके उन्हें लाभ पहुँचाने का प्रयास करें। ऐसे कार्य ही असली कल्याण-कार्य हैं। ऐसे कार्यों के द्वारा प्रचारक या कृष्णभावनामृत का प्रसार करने वाला कोई भी व्यक्ति भगवान् द्वारा मान्य होता है। जैसाकि स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (१८.६८-६९) में पुष्टि की है—

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।

भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यतसंशयः ॥

न च तस्मान्मुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।

भविता न च मे तस्माद् अन्यः प्रियतरो भुवि ॥

“जो व्यक्ति भक्तों को यह परम रहस्य बताता है, वह शुद्धभक्ति को निश्चय ही प्राप्त करेगा और अन्त में वह मेरे पास वापस आएगा। इस संसार में उसकी अपेक्षा कोई अन्य सेवक न तो मुझे अधिक प्रिय है और न कभी होगा।”

ब्रह्मा भवो भवन्तश्च मनवो विबुधेश्वराः ।

विभूतयो मम ह्येता भूतानां भूतिहेतवः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा—ब्रह्मा; भवः—शिव; भवन्तः—तुम सारे प्रजापति; च—तथा; मनवः—सारे मनु; विबुध-ईश्वराः—विभिन्न देवता (यथा सूर्य, चन्द्र, शुक्र, मंगल तथा बृहस्पति जो संसार के कल्याण हेतु विभिन्न कार्यों का भार सँभालते हैं); विभूतयः—शक्ति का विस्तार; मम—मेरा; हि—निस्सन्देह; एताः—ये, इन सब; भूतानाम्—सारे जीवों का; भूति—कल्याण के; हेतवः—कारण।

ब्रह्मा, शिव, मनुगण, उच्च लोकों के अन्य सारे देवता तथा जनसंख्या बढ़ाने वाले तुम सारे प्रजापति सारे जीवों के लाभार्थ कार्य कर रहे हो। इस तरह मेरी तटस्था शक्ति के अंश रूप तुम सभी मेरे विभिन्न गुणों के अवतार हो।

तात्पर्य : भगवान् के नाना प्रकार के अवतार या अंश हैं। उनके स्वयं के या विष्णुतत्त्व के अंश स्वांश कहलाते हैं, जबकि सारे जीव जो विष्णुतत्त्व नहीं, अपितु जीव-तत्त्व हैं विभिन्नांश कहलाते हैं। यद्यपि दक्ष प्रजापति ब्रह्मा तथा शिव के समान स्तर पर नहीं हैं, किन्तु उनकी तुलना उनसे की जाती है, क्योंकि वे भगवान् की सेवा में लगे हैं। भगवान् की सेवा में ऐसा नहीं होता कि ब्रह्मा को अत्यधिक बड़ा माना जाये जबकि भगवान् की महिमा का प्रचार करने वाले सामान्य मनुष्य को अत्यन्त निम्न माना जाये। ऐसे अन्तर नहीं होते। कोई भौतिक दृष्टि से चाहे उच्च हो या निम्न, जो कोई भी भगवान् की सेवा में लगा हुआ है, वह उन्हें आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यन्त प्रिय है। इस सन्दर्भ में श्रील मध्वाचर्य तन्त्रनिर्णय से यह उद्धरण देते हैं—

विशेषव्यक्तिपात्रत्वाद् ब्रह्माद्यास्तु विभूतयः ।

तदन्तर्यामिणश्चैव मत्स्याद्या विभवाः स्मृताः ॥

ब्रह्मा से लेकर सारे जीव, जो भगवान् की सेवा में लगे हैं, असाधारण हैं और विभूति कहलाते हैं। जैसाकि भगवान् ने भगवद्गीता (१०.४१) में कहा है—

यद्यद्विभूतिमत् सत्त्व श्रीमदूर्जितमेव वा ।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम् ॥

“तुम जान लो कि सारा ऐश्वर्य, सौन्दर्य तथा तेजस्वी सृष्टियाँ मेरे तेज की एक चिनगारी मात्र से उद्भूत हैं।” भगवान् की ओर से कार्य करने के लिए विशेष रूप से शक्तिप्रदत्त जीव विभूति कहलाता है, जबकि भगवान् के विष्णु-तत्त्व अवतार, यथा मत्स्य अवतार, विभव कहलाते हैं (केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे) ।

तपो मे हृदयं ब्रह्मास्तनुर्विद्या क्रियाकृतिः ।

अङ्गानि क्रतवो जाता धर्म आत्मासवः सुराः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

तपः—मन का नियंत्रण, योग तथा ध्यान जैसी तपस्याएँ; मे—मेरा; हृदयम्—हृदय; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; तनुः—शरीर; विद्या—वैदिक शास्त्रों से प्राप्त ज्ञान; क्रिया—आध्यात्मिक कार्य; आकृतिः—स्वरूप; अङ्गानि—शरीर के अंग; क्रतवः—वैदिक वाङ्मय में उल्लिखित कर्मकाण्ड तथा यज्ञ; जाताः—पूर्ण किये गये; धर्मः—कर्मकाण्ड सम्पन्न करने के लिए धार्मिक सिद्धान्त; आत्मा—मेरी आत्मा; असवः—प्राणवायु; सुराः—देवता जो भौतिक जगत के विभिन्न विभागों में मेरे आदेशों को लागू करते हैं।

हे ब्राह्मण! ध्यान रूप में तपस्या ही मेरा हृदय है, स्तुतियों तथा मंत्रों के रूप में वैदिक ज्ञान ही मेरा शरीर है और आध्यात्मिक कार्य तथा आनन्दानुभूतियाँ ही मेरा वास्तविक स्वरूप है। उचित रीति से सम्पन्न हुए कर्मकाण्ड तथा यज्ञ मेरे शरीर के विविध अंग हैं; पुण्य या आध्यात्मिक कार्यों से उत्पन्न अदृश्य सौभाग्य मेरा मन है और विविध विभागों में मेरे आदेशों को लागू करने वाले देवता मेरे जीवन तथा आत्मा हैं।

तात्पर्य : कभी-कभी नास्तिक लोग तर्क करते हैं कि ईश्वर हमें आँखों से नहीं दिखते,

इसलिए वे ईश्वर में विश्वास नहीं करते। उनके लिए भगवान् यहाँ पर ऐसी विधि बता रहे हैं जिससे वे ईश्वर को उनके निराकार रूप में देख सकते हैं। बुद्धिमान लोग ईश्वर को साकार रूप में देख सकते हैं जैसा कि शास्त्रों में बतलाया गया है, किन्तु यदि कोई व्यक्ति ईश्वर का दर्शन करने के लिए आतुर है, वह उन्हें आमने-सामने देखना चाहता है, तो वह इस वर्णन के माध्यम में भगवान् को देख सकता है, जिसमें उनके शरीर के विविध आन्तरिक तथा बाह्य अंगों का चित्रण हुआ है।

आध्यात्मिक जीवन का पहला सिद्धान्त है तपस्या में लगना अर्थात् भौतिक कार्यकलापों से मुख मोड़ना। इसके बाद आध्यात्मिक कार्य आते हैं यथा वैदिक यज्ञ करना, वैदिक ज्ञान का अध्ययन, भगवान् का ध्यान तथा हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन। मनुष्य को चाहिए कि देवताओं का भी सम्मान करे और यह समझे कि वे किस तरह स्थित हैं, किस तरह कार्य करते हैं तथा इस भौतिक जगत के विभिन्न विभागों के कार्यों का किस तरह प्रबन्ध करते हैं। इस तरह मनुष्य देख सकता है कि ईश्वर किस तरह विद्यमान है और भगवान् की उपस्थिति के फलस्वरूप किस तरह हर वस्तु की समुचित व्यवस्था होती है। जैसाकि भगवान् ने *भगवद्गीता* (९.१०) में कहा है—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

“हे कुन्तीपुत्र! यह भौतिक प्रकृति मेरी अध्यक्षता में कार्य करती है, जिससे सारे चर तथा अचर प्राणी उत्पन्न होते हैं। उसके शासन के द्वारा यह जगत बारम्बार सृजित और विनष्ट होता रहता है।” यदि कोई व्यक्ति भगवान् को देखने में अक्षम है, यद्यपि वे अपने विभिन्न अवतारों में कृष्ण रूप में वर्तमान हैं, तो वह भौतिक प्रकृति के कार्यकलापों को देखकर वेदों में दिये गये निर्देशों के अनुसार भगवान् के निर्विशेष रूप को देख सकता है।

वैदिक आदेशों के अन्तर्गत किया गया कोई भी कार्य धर्म कहलाता है जैसाकि यमदूतों ने वर्णन किया है (*भागवत* ६.१.४०)—

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ।

वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम ॥

“जो वेदों में निर्धारित हुआ है, वह धर्म है और इसका उल्टा अधर्म है। वेद प्रत्यक्ष भगवान् नारायण हैं तथा स्वतः उत्पन्न हैं। ऐसा हमने यमराज से सुना है।”

इस सम्बन्ध में श्रील मध्वाचार्य की टिप्पणी है—

तपोऽभिमानी रुद्रस्तु विष्णोर्हृदयामाश्रितः ।

विद्या रूपा तथैवोमा विष्णोस्तनुमुपाश्रिता ॥

शृंगाराद्याकृतिगतः क्रियात्मा पाकशासनः ।

अंगेषु क्रतवः सर्वे मध्यदेहे च धर्मराट् ।

प्राणो वायुश्चित्तगतो ब्रह्माद्याः स्वेषु देवताः ॥

विभिन्न देवता पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के संरक्षण में कार्य करते हैं और अपने विविध कार्यों के अनुसार उनके भिन्न-भिन्न नाम पड़े हैं।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्किञ्चान्तरं बहिः ।

संज्ञानमात्रमव्यक्तं प्रसुप्तमिव विश्वतः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं, भगवान्; एव—एकमात्र; आसम्—था; एव—निश्चय ही; अग्रे—प्रारम्भ में, सृष्टि से पूर्व; न—नहीं; अन्यत्—अन्य; किञ्च—कुछ भी; अन्तरम्—मेरे अतिरिक्त; बहिः—बाहरी (चूँकि विराट् जगत आध्यात्मिक जगत से बाहर है इसलिए जब भौतिक जगत न था, तो आध्यात्मिक जगत विद्यमान था); संज्ञान-मात्रम्—केवल जीव की चेतना; अव्यक्तम्—अप्रकट; प्रसुप्तम्—सुप्त; इव—सदृश; विश्वतः—सर्वत्र ।

इस विराट् जगत की सृष्टि के पूर्व अकेला मैं अपनी विशिष्ट आध्यात्मिक शक्तियों के साथ विद्यमान था। तब चेतना प्रकट नहीं हुई थी, जिस तरह नींद के समय मनुष्य की चेतना अप्रकट रहती है।

तात्पर्य : अहम् शब्द किसी व्यक्ति का सूचक है। जैसा कि वेदों में बतलाया गया है—*नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्*—भगवान् असंख्य नित्यों में परम नित्य तथा असंख्य जीवों में सर्वोपरि व्यक्ति हैं। भगवान् ऐसे पुरुष हैं जिसका निर्विशेष रूप भी है। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (१.२.११)

में कहा गया है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्दते ॥

“विद्वान् अध्यात्मवादी जो परम सत्य को जानते हैं इस अद्वैत वस्तु को ब्रह्म, परमात्मा या भगवान् कहकर पुकारते हैं।” परमात्मा तथा निर्विशेष ब्रह्म का विचार सृष्टि के बाद उत्पन्न हुआ। सृष्टि के पूर्व एकमात्र भगवान् विद्यमान थे। जैसा कि *भगवद्गीता* (१८.५५) में दृढ़तापूर्वक घोषणा की गई है—भगवान् को एकमात्र भक्तियोग द्वारा समझा जा सकता है। परम कारण अर्थात् सृष्टि के परम कारण भगवान् हैं, जिन्हें केवल भक्तियोग से समझा जा सकता है। उन्हें चिन्तनपरक दार्शनिक मीमांसा या ध्यान द्वारा नहीं समझा जा सकता, क्योंकि ये सारी विधियाँ भौतिक जगत की सृष्टि के बाद अस्तित्व में आईं। भगवान् की निर्विशेष तथा अन्तर्यामी धारणा भौतिक रूप से कुछ न कुछ दूषित रहती है। इसलिए असली आध्यात्मिक विधि भक्तियोग है। जैसाकि भगवान् ने कहा है— *भक्त्या मामभिजानाति*—केवल भक्ति द्वारा मुझे जाना जा सकता है। सृष्टि के पूर्व भगवान् पुरुष के रूप में विद्यमान थे, जैसाकि *अहम्* शब्द से सूचित होता है। जब प्रजापति दक्ष ने उन्हें ऐसे पुरुष के रूप में देखा जो सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणों से सुसज्जित थे तो वस्तुतः उसे भक्ति के द्वारा उस *अहम्* शब्द के अर्थ का अनुभव हुआ।

हर व्यक्ति शाश्वत है। चूँकि भगवान् कहते हैं कि वे सृष्टि के पूर्व (*अग्रे*) पुरुष रूप में विद्यमान थे और प्रलय के बाद भी विद्यमान रहेंगे इसलिए भगवान् शाश्वत पुरुष हैं। इसलिए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *श्रीमद्भागवत* (१०.९.१३-१४) से निम्नलिखित श्लोकों को उद्धृत किया है—

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ।

पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥

तं मत्वात्मजम व्यक्तंमर्त्यलिंगमधोक्षजम् ।

गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥

वृन्दावन में भगवान् माता यशोदा के पुत्र के रूप में प्रकट हुए, जिन्होंने भगवान् को रस्सी से इस प्रकार बाँध दिया जिस तरह सामान्य माता अपने भौतिक बालक को बाँधती है। वस्तुतः भगवान् के रूप के बाहरी तथा भीतरी विभाग नहीं हैं (सच्चिदानन्दविग्रह), किन्तु जब वे अपने रूप में प्रकट होते हैं, तो अज्ञानी लोग उन्हें सामान्य व्यक्ति समझते हैं। *अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्*—यद्यपि वे अपने निजी शरीर में आते हैं, जो कभी नहीं बदलता, किन्तु मूढ अर्थात् अज्ञानी लोग सोचते हैं कि निर्विशेष ब्रह्म ने पुरुष रूप में आने के लिए भौतिक शरीर धारण कर लिया है। साधारण जीव भौतिक शरीर धारण करते हैं किन्तु भगवान् ऐसा नहीं करते। चूँकि भगवान् परम चेतना हैं, इसलिए यहाँ पर कहा गया है कि *सज्ञानमात्रम्* अर्थात् आदि चेतना, या कृष्णभावनामृत सृष्टि के पूर्व अप्रकट था, यद्यपि भगवान् की चेतना सबों का उद्गम है। *भगवद्गीता* (२.१२) में भगवान् कहते हैं, “ऐसा कोई समय नहीं था जब मैं या तुम न थे, या ये सारे राजा न थे, न ही भविष्य में हममें से कोई नहीं होगा। इस तरह भगवान् भूत, वर्तमान तथा भविष्य में परम सत्य हैं।

इस सन्दर्भ में मध्वाचार्य ने *मत्स्य पुराण* से दो श्लोक उद्धृत किये हैं—

नानावर्णो हरिस्त्वेको बहुशीर्षभुजो रूपात् ।

आसील्लये तदन्यत्तु सूक्ष्मरूपं श्रियं विना ॥

असुप्तः सुप्त इव च मीलिताक्षोऽभवद्भरिः ।

अन्यत्रानादराद्विष्णौ श्रीश्च लीनेव कथ्यते ।

सूक्ष्मत्वेन हरौ स्थानाल्लीनमन्यदपीष्यते ॥

हर वस्तु का संहार हो जाने के बाद भगवान् अपने सच्चिदानन्द विग्रह के कारण अपने आदि रूप में रहते हैं, किन्तु अन्य जीवों के शरीर भौतिक होते हैं, अतः पदार्थ पदार्थ में लीन हो जाता है और आत्मा का सूक्ष्म रूप भगवान् के शरीर के भीतर बना रहता है। भगवान् सोते नहीं, किन्तु

सामान्य जीव अगली सृष्टि के होने तक सोये रहते हैं। अज्ञानी या मूढ़ व्यक्ति सोचता है कि प्रलय के बाद भगवान् का ऐश्वर्य विद्यमान नहीं रहता, किन्तु यह तथ्य नहीं है। भगवान् का ऐश्वर्य उसी तरह रहता है, जिस तरह वह आध्यात्मिक जगत में रहता है, केवल भौतिक जगत में हर वस्तु विलीन होती है। *ब्रह्मलीन* अर्थात् परब्रह्म में लीन होना वास्तविक *लीन* या प्रलय नहीं है, क्योंकि ब्रह्मज्योति में शेष बचा सूक्ष्म रूप भौतिक सृष्टि होने पर पुनः भौतिक जगत में लौट आयेगा और पुनः भौतिक रूप धारण करेगा। इसका वर्णन *भूत्वा भूत्वा प्रलीयते* के रूप में किया गया है। जब भौतिक शरीर का संहार हो जाता है, तो आत्मा अपने सूक्ष्म रूप में बना रहता है और यही बाद में अन्य भौतिक शरीर धारण कर लेता है। यह बद्धजीवों पर लागू होता है, किन्तु भगवान् तो अपनी आदि *चेतना* तथा आध्यात्मिक शरीर में शाश्वत रूप से रहते जाते हैं।

मय्यनन्तगुणेऽनन्ते गुणतो गुणविग्रहः ।

यदासीत्तत एवाद्यः स्वयम्भूः समभूदजः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

मयि—मुझमें; अनन्त-गुणे—असीम शक्ति से युक्त; अनन्ते—असीम; गुणतः—माया नामक मेरी शक्ति से; गुण-विग्रहः—ब्रह्माण्ड जो कि प्रकृति के गुणों का परिणाम है; यदा—जब; आसीत्—जगत में आया; ततः—उसमें; एव—निस्सन्देह; आद्यः—प्रथम जीव; स्वयम्भूः—ब्रह्मा; समभूत्—उत्पन्न हुआ; अजः—यद्यपि भौतिक माता से नहीं।

मैं असीम शक्ति का आगार हूँ, इसलिए मैं अनन्त या सर्वव्यापक के नाम से प्रसिद्ध हूँ।

मेरी भौतिक शक्ति से मेरे भीतर विराट जगत प्रकट हुआ और इस विराट जगत में मुख्य जीव ब्रह्मा प्रकट हुए जो तुम लोगों के स्रोत हैं और वे किसी भौतिक माता से नहीं जन्मे हैं।

तात्पर्य : यह विश्व-सृष्टि के इतिहास का विवरण है। प्रथम कारण तो स्वयं परम पुरुष भगवान् हैं। उनसे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा ब्रह्माण्ड के मामलों का कार्यभार सँभालते हैं। भौतिक सृष्टि के विश्व सम्बन्धी मामले भगवान् की भौतिक शक्ति पर निर्भर करते हैं, जो कि भौतिक सृष्टि के कारण हैं। सम्पूर्ण विराट जगत को यहाँ पर *गुणविग्रहः* अर्थात् भगवान् के गुणों का स्वरूप कहा गया है। विराट जगत से पहली सृष्टि ब्रह्मा की होती है, जो सारे जीवों के कारण

हैं। इस सन्दर्भ में श्रील मध्वाचार्य भगवान् के अनन्त गुणों का वर्णन करते हैं—

प्रत्येकशो गुणानां तु निःसीमत्वमुदीर्यते ।

तदानन्त्यं तु गुणतस्ते चानन्ता हि संख्यया ।

अतोऽनन्तगुणो विष्णुर्गुणतोऽनन्त एव च ॥

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते—भगवान् की असंख्य शक्तियाँ हैं और वे सभी असीम हैं। इसलिए स्वयं भगवान् तथा उनके सारे गुण, रूप, लीलाएँ तथा साज-सामग्री भी असीम हैं। चूँकि भगवान् विष्णु में अनन्त गुण हैं, इसलिए वे अनन्त कहलाते हैं।

स वै यदा महादेवो मम वीर्योपबृंहितः ।

मेने खिलमिवात्मानमुद्यतः स्वर्गकर्मणि ॥ ४९ ॥

अथ मेऽभिहितो देवस्तपोऽतप्यत दारुणम् ।

नव विश्वसृजो युष्मान्येनादावसृजद्विभुः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

सः—वह (ब्रह्मा); वै—निस्सन्देह; यदा—जब; महा-देवः—समस्त देवताओं के प्रधान; मम—मेरा; वीर्य-उपबृंहितः—शक्ति से वर्धित हुआ; मेने—सोचा; खिलम्—अशक्त; इव—मानो; आत्मानम्—स्वयं; उद्यतः—प्रयत्नशील; स्वर्ग-कर्मणि—विश्व-प्रपंचों की सृष्टि में; अथ—उस समय; मे—मेरे द्वारा; अभिहितः—सलाह दिया गया; देवः—उस ब्रह्मा ने; तपः—तपस्या; अतप्यत—सम्पन्न की; दारुणम्—अत्यन्त कठिन; नव—नौ; विश्व-सृजः—ब्रह्माण्ड की रचना करने के लिए महत्त्वपूर्ण व्यक्ति; युष्मान्—तुम सभी; येन—जिसके द्वारा; आदौ—प्रारम्भ में; असृजत्—उत्पन्न किया; विभुः—महान्।

जब ब्रह्माण्ड के मुख्य देवता ब्रह्मा (स्वयंभू) मेरी शक्ति के द्वारा प्रेरणा पाकर सृजन करने का प्रयास कर रहे थे तो उन्होंने अपने को असमर्थ पाया। इसलिए मैंने उन्हें सलाह दी और मेरे आदेशों के अनुसार उन्होंने कठिन तपस्या की। इस तपस्या के कारण सृजन के कार्यों में अपनी सहायता के लिए उन्होंने तुम समेत नौ महापुरुषों को उत्पन्न किया।

तात्पर्य : तपस्या के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। किन्तु ब्रह्मा को उनकी तपस्या के कारण इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सृजन करने के लिए शक्ति प्रदान की गई थी। हम जितनी ही तपस्या करते हैं, भगवत्कृपा से हम उतने ही अधिक शक्तिमान बनते हैं, इसलिए ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को

सलाह दी—*तपोदिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येद्*—“भक्ति के दैवी पद को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को तपस्या में संलग्न होना चाहिए। ऐसे कार्य से उसका हृदय शुद्ध होता है।” (*भागवत* ५.५.१)। हम अपने भौतिक जगत में अशुद्ध हैं, अतएव हम कोई आश्चर्यजनक कार्य नहीं कर सकते, किन्तु यदि हम अपने जीवन को तपस्या द्वारा शुद्ध कर लें तो भगवत्कृपा से हम आश्चर्यजनक कार्य कर सकते हैं। इसलिए तपस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है जैसाकि इस श्लोक में बल दिया गया है।

एषा पञ्चजनस्याङ्ग दुहिता वै प्रजापतेः ।

असिक्नी नाम पत्नीत्वे प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

एषा—यह; पञ्चजनस्य—पञ्चजन की; अङ्ग—हे पुत्र; दुहिता—पुत्री; वै—निस्सन्देह; प्रजापतेः—अन्य प्रजापति; असिक्नी नाम—असिक्नी नामक; पत्नीत्वे—अपनी पत्नी के रूप में; प्रजेश—हे प्रजापति; प्रतिगृह्यताम्—स्वीकार करो।

हे पुत्र दक्ष! प्रजापति पञ्चजन के असिक्नी नामक पुत्री है, जिसे मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ

जिससे तुम उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर सको।

मिथुनव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः ।

मिथुनव्यवायधर्मिण्यां भूरिशो भावयिष्यसि ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

मिथुन—पुरुष तथा स्त्री का; व्यवाय—संभोग; धर्मः—जो धार्मिक कृत्य द्वारा स्वीकार करता है; त्वम्—तुम; प्रजा-सर्गम्—जीवों की सृष्टि; इमम्—यह; पुनः—फिर; मिथुन—स्त्री तथा पुरुष के संयोग का; व्यवाय-धर्मिण्याम्—संभोग के धार्मिक कृत्य के अनुसार; भूरिशः—अनेक बार; भावयिष्यसि—तुम उत्पन्न करोगे।

अब पुरुष तथा स्त्री रूप में यौन जीवन में संयुक्त हो जाओ और इस तरह संभोग द्वारा

तुम इस कन्या के गर्भ से जनसंख्या की वृद्धि करने के लिए सैकड़ों सन्तानें उत्पन्न कर सकोगे।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (७.११) में भगवान् कहते हैं—*धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि*—मैं काम हूँ जो धार्मिक सिद्धान्तों के विरुद्ध नहीं है। भगवान् द्वारा प्रदत्त संभोग धर्म है, किन्तु इन्द्रियभोग के

लिए अभीप्सित नहीं है। संभोग द्वारा इन्द्रियभोग में लिप्त रहने की अनुमति वैदिक सिद्धान्त नहीं देते। केवल सन्तान उत्पन्न करने के लिए कोई भी यौन जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्ति का पालन कर सकता है। इसलिए इस श्लोक में भगवान् ने दक्ष से कहा “यह कन्या तुम्हें केवल सन्तानें उत्पन्न करने के लिए यौन जीवन हेतु दी जा रही है, किन्हीं अन्य कार्यों के लिए नहीं। यह अत्यन्त उर्वर है, अतएव तुम जितनी भी सन्तानें उत्पन्न करना चाहोगे, जन्म दे सकोगे।”

इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर टिप्पणी करते हैं कि दक्ष को असीमित संभोग की सुविधा प्रदान की गई थी। दक्ष अपने पूर्व जीवन में भी दक्ष के ही नाम से विख्यात था, किन्तु यज्ञ सम्पन्न करते समय उसने शिवजी का अपमान किया था, अतएव उसके सिर के स्थान पर बकरे का सिर लगा दिया गया था। तब दक्ष ने अपनी इस पतितवस्था के कारण अपना शरीर त्याग दिया, किन्तु उसमें वही असीम यौन इच्छा बनी रही इसलिए उसने तपस्या की जिससे उसने भगवान् को तुष्ट कर लिया जिन्होंने उसे संभोग के लिए असीम शक्ति प्रदान की।

यह ध्यान देना होगा कि यद्यपि संभोग की ऐसी सुविधा भगवान् की कृपा से प्राप्त की जाती है, किन्तु यह सुविधा बड़े-चढ़े भक्तों को, जो भौतिक इच्छाओं से मुक्त रहते हैं (*अन्याभिलाषिता शून्यम्*), नहीं प्रदान की जाती। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देना चाहिए कि यदि कृष्णभावनामृत आन्दोलन में लगे अमरीकी लड़के तथा लड़कियाँ भगवान् की प्रेमाभक्ति के परम लाभ को पाने के लिए कृष्णभावनामृत में प्रगति करना चाहते हैं, तो उन्हें यौन जीवन की इस सुविधा में लिप्त होने से बचना चाहिए। अतः हम सलाह देते हैं कि मनुष्य को कम से कम अवैध संभोग से तो दूर रहना चाहिए इसलिए यदि यौन जीवन के लिए अवसर आयें भी तो मनुष्य को चाहिए कि एकमात्र संतान के लिए संभोग करने की परिसीमा को स्वेच्छा से स्वीकार करे, अन्य किसी कार्य के लिए नहीं। कर्दम मुनि को भी यौन जीवन की सुविधा प्रदान की गई थी, किन्तु उन्हें इसकी रंचमात्र ही इच्छा थी। अतएव देवहूति के गर्भ से सन्तानें उत्पन्न करने के बाद कर्दम मुनि पूर्णतया विरक्त हो गये। तात्पर्य यह है कि यदि कोई भगवद्धाम वापस जाना चाहता है, तो उसे स्वेच्छा से यौन जीवन

से बचना चाहिए। यौन को आवश्यकतानुसार ही स्वीकार करना चाहिए, असीमित रूप में नहीं।

किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि दक्ष ने असीमित यौन की सुविधा पाकर भगवान् की कृपा प्राप्त की। अगले श्लोकों से पता चलेगा कि दक्ष ने पुनः अपराध किया, इस बार यह नारद के चरणकमलों पर था। इसलिए यद्यपि यौन जीवन भौतिक जगत का सर्वोच्च भोग है और यद्यपि भगवत्कृपा से मनुष्य को यौन सुख का अवसर प्राप्त हो सकता है, किन्तु इसमें अपराध करने का खतरा बना रहता है। दक्ष ऐसे अपराधों के लिए उन्मुख था, इसलिए सच सच कहा जाये तो उस पर भगवान् की कृपा नहीं थी। मनुष्य को यौन जीवन के लिए असीम शक्ति पाने के लिए भगवान् से कृपा की याचना नहीं करनी चाहिए।

त्वत्तोऽधस्तात्प्रजाः सर्वा मिथुनीभूय मायया ।

मदीयया भविष्यन्ति हरिष्यन्ति च मे बलिम् ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

त्वत्तः—तुम; अधस्तात्—बाद में; प्रजाः—जीव; सर्वाः—सारे; मिथुनी-भूय—यौन जीवन वाले; मायया—माया द्वारा दी गई सुविधाओं या प्रभाव के कारण; मदीयया—मेरा; भविष्यन्ति—हो जायेंगे; हरिष्यन्ति—वे प्रदान करेंगे; च—भी; मे—मेरे प्रति; बलिम्—भेंटें।

जब तुम हजारों सन्तानों को जन्म दे चुकोगे, तो वे भी मेरी माया द्वारा मोहित की जाती रहेंगी और तुम्हारी ही तरह संभोग में संलग्न होंगी। किन्तु तुम पर और उन पर मेरी कृपा के कारण, वे भी मुझे भक्ति की भेंटें प्रदान कर सकेंगे।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वा मिषतस्तस्य भगवान्विश्वभावनः ।

स्वप्नोपलब्धार्थ इव तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी कहने लगे; इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; मिषतः तस्य—जब वह (दक्ष) स्वयं देख रहा था; भगवान्—भगवान्; विश्व-भावनः—विश्व के मामलों को उत्पन्न करने वाले; स्वप्न-उपलब्ध-अर्थः—स्वप्न में प्राप्त वस्तु; इव—सदृश; तत्र—वहाँ; एव—निश्चय ही; अन्तर्दधे—अन्तर्धान हो गए; हरिः—भगवान् हरिः।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्रष्टा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्

हरि प्रजापति दक्ष के सामने इस तरह बोल चुके तो वे तुरन्त अन्तर्धान हो गये, मानो वे स्वप्न में अनुभव की गई कोई वस्तु रहे हों।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के षष्ठ स्कन्ध के अन्तर्गत “प्रजापति दक्ष द्वारा भगवान् से की गई हंसगुह्य प्रार्थनाएँ” नामक चतुर्थ अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।